भारतीय संस्कृति

डा० गोविन्ददास

सत्यमेव जयते

भारत सरकार
वैज्ञानिक अनुसंधान और सांस्कृतिक कार्य मंत्रालय

प्रकाशन संख्या 76
मूल्य पच्चीस नये पैसे

आमुख

डा० गोविन्ददास हिन्दी के गण्यमान्य लेखक हैं । इस लेख में उन्होंने यह प्रतिपादित किया है कि विश्व संस्कृति को भारतीय संस्कृति ने शांति भावना और विश्व कल्याण की विचारधारा का दान दिया है ।

इस लेख का एक सारांश मंत्रालय की त्रैमासिक पत्रिका 'संस्कृति' के आश्विन, 1882 अंक में प्रकाशित हुआ था । किन्तु पूरे लेख के प्रकाशन-लोभ का संवरण हम न कर सके और इसका परिणाम इस अविकल लेख का पुस्तिका के रूप में यह प्रकाशन है ।

अपने इस प्रकाशन के साथ हम एक नये क्षेत्र में पदार्पण कर रहे हैं और बाहर के सुयोग्य और प्रतिष्ठित विद्वानों द्वारा लिखित हिन्दी पुस्तिकाओं के प्रकाशन की दिशा में आगे भी प्रगति करने की हमारी योजना है ।

इस पुस्तिका में व्यक्त विचार लेखक के अपने व्यक्तिगत विचार हैं और मंत्रालय उनके बारे में उत्तरदायी नहीं है ।

भारतीय संस्कृति

संस्कृति की परिभाषा

संस्कृति शब्द की अब तक शायद कोई ऐसी परिभाषा नहीं हो पायी है जिसे सर्वमान्य कहा जा सके। संसार के विभिन्न देशों के अनेक विद्वानों ने संस्कृति की भिन्न-भिन्न परिभाषाएं की हैं।

इस समस्त सृष्टि को मोटे रूप से दो विभागों में बांटा जा सकता है—एक जड़ और दूसरा जंगम। जड़ से जंगम की उत्पत्ति हुई या जंगम से जड़ की, इसमें चाहे मतभेद हो, परन्तु जड़ से जंगम का स्थान ऊंचा है इसमें मतभेद नहीं हो सकता। जंगम रचना में मानव सर्वश्रेष्ठ है। इसका प्रधान कारण यह है कि निसर्ग ने मानव को जो ज्ञान शक्ति दी है, वह अन्य किसी प्राणी को नहीं। यजुर्वेद में मनुष्य को 'अमृतस्य पुत्राः' कहा गया है। मानव ने अपनी ज्ञान शक्ति से न जाने कितने दीर्घ काल में जो कुछ उपार्जित किया है वह सब संस्कृति के अन्तर्गत आ जाता है।

संस्कृति शब्द संस्कृत की कृ धातु के साथ सम् उपसर्ग जोड़कर सुट् का आगम करके क्तिन् प्रत्यय लगाने से बनता है। अर्थ हुआ सम् (सम्यक्) कृति, याने सदाचार वाला कर्म। व्यापक दृष्टि से मनुष्य का जिस कर्म से लौकिक और पारलौकिक उत्कर्ष हो, ऐसे आचरण के ज्ञान को संस्कृति नाम मिला है। संस्कृति का प्रादुर्भाव और विकास सुधरे हुए और सभ्य मानव समाज में ही होता है। भिन्न-भिन्न देशों की संस्कृति के भिन्न-भिन्न रूप मिलते हैं, लेकिन अगर इन रूपों के मूल पर विचार किया जाय, तो बाह्य भिन्नता में आन्तरिक एकता निर्विवाद रूप से दृष्टिगोचर होती है। परिवर्तन प्रकृति का अकाट्य नियम है। परिवर्तन सदा ही चलता रहता है, अतः काल और देश के अनुसार आन्तरिक एकता के रहते हुए भी बाहरी स्वरूप में भिन्नता होना स्वाभाविक है। प्रकृति ने मानव को बीज रूप में तीन तरह की शक्तियां दी हैं, जिनका सम्बन्ध तन, मन और आत्मा से है। शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों का विकास होकर उनका जो विकसित रूप बनता है, वही संस्कृति है जिस संस्कृति में यह विकसित स्वरूप जितना ऊंचा होगा, वह संस्कृति उतनी ही ऊंची होगी हमारे ऋषि-महर्षियों ने और तत्ववेत्ताओं ने मानव जीवन का ध्येय शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्ति की सर्वांगीण और सर्वतोमुखी उन्नति माना था, जहां यह हुआ वहीं संस्कृति की छटा छिटकी।

संस्कृति के सम्बन्ध में छान्दोग्य उपनिषद् में जो कुछ कहा गया है उसकी प्रबन्ध प्रकाश में व्याख्या की गयी है :

"कस्यापि देशस्य समाजस्य वा विभिन्नजीवनव्यापारेषु सामाजिकसम्बन्धेषु वा मानवीयत्वदृष्ट्या प्रेरणाप्रदानां तत्तदादर्शानां समष्टिरेव संस्कृतिः। वस्तुतस्तस्यामेव सर्वस्यापि सामाजिकजीवनस्योत्कर्षः पर्यवस्यति। तयैव तुलया विभिन्नसभ्यतानामुत्कर्षापकर्षौ मीयेते। किं बहुना, संस्कृतिरेव वस्तुतः सेतुर्विधृतिरेषा लोकानामसम्भेदाय (छान्दोग्योपनिषद् ८।४।१)

इत्येव वर्णयितुं शक्यते। अतएव च सवषां धर्माणां संप्रदायानामाचाराणां च परस्परं समन्वयः संस्कृतेरेवाधारेण कर्तुं शक्यते।"

(प्रबन्धप्रकाश, भाग २, पृ० ३)

अर्थात् किसी देश अथवा समाज के भिन्न-भिन्न जीवन व्यापारों में या सामाजिक सम्बन्धों में मानवता की दृष्टि से जो आदर्श प्रेरणा प्रदान करते हैं उनकी समष्टि ही संस्कृति है। सामाजिक जीवन के समस्त क्षेत्रों का समावेश संस्कृति में होता है। भिन्न-भिन्न सभ्यताओं के उत्थान एवं पतन के नाप के लिए संस्कृति ही मानदण्ड है। संक्षेप में, संस्कृति के द्वारा ही मानवों का संगठन होता है।

संस्कृति शब्द संस्कार शब्द से भी सम्बन्धित है। संस्कार का कार्य परिष्कृत करना है।

अंग्रेज़ी भाषा का सबसे प्रमाणित कोष आक्सफोर्ड डिक्शनरी माना जाता है। संस्कृति के लिए अंग्रेज़ी में कल्चर शब्द का प्रयोग होता है। आक्सफोर्ड डिक्शनरी में इस शब्द की निम्नलिखित परिभाषा की गयी है :–

"The training and refinement of mind, tastes and manners, the condition of being thus trained and refined, the intellectual side of civilization, the acquainting ourselves with the best that has been known and said in the world."

इस परिभाषा का हिन्दी में अर्थ हुआ—मन की अभिरुचियों और मन के आचरण का प्रशिक्षण तथा परिष्करण एवं वह स्थिति जिसमें मन की अभिरुचियों और मन का आचरण प्रशिक्षित और परिष्कृत हो जाते हैं, सभ्यता का बौद्धिक पक्ष, संसार में जो कुछ सर्वोत्तम जाना और कहा गया है, उससे परिचय।

संस्कृति और सभ्यता का अन्तर

संस्कृति की परिभाषा को और अधिक समझने के लिए संस्कृति और सभ्यता के अन्तर को समझ लेना चाहिए। संस्कृति और सभ्यता सर्वथा एक नहीं है; परन्तु दोनों का अन्तर इस प्रकार का है कि वे बहुधा पर्यायवाची माने जाते हैं, यह भूल है।

प्रकृति ने हमें जो कुछ दिया है उसे काम में लेकर मनुष्य ने जो आधिभौतिक प्रगति की है उसको हम सभ्यता (सिविलिजेशन) कहते हैं तथा बुद्धि का सेवन कर मानव जो सृजन करता है वह संस्कृति (कल्चर) है। ऊपर कहा गया है कि मनुष्य का इस सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ स्थान उसकी ज्ञान-शक्ति के कारण है। यह शक्ति अधिभूत से पृथक् है। मनुष्य इस शक्ति के कारण विचार करता है और इस विचार के अनुरूप जो सृजन होता है वह संस्कृति है। इस सृजन के भी दो प्रकार हैं। मानव के भौतिक सृजन सभ्यता के अन्तर्गत आते हैं और जो सृजन विचार प्रधान होते हैं तथा जिनसे प्रेरणा प्राप्त होती है, वे संस्कृति के अन्तर्गत आते हैं।

संस्कृति का सम्बन्ध अन्तरंग से है और सभ्यता का बहिरंग से। संस्कृति आत्मा है और सभ्यता देह। संस्कृति आध्यात्मिक स्तर है और सभ्यता आधिभौतिक। सभ्यता समाज से सम्बन्ध रखती है अर्थात् जो व्यक्ति मानवों के समुदाय में बैठने योग्य हो, वह सभ्य

कहलाता है। ऐसे सभ्य के कार्यों को सभ्यता कहते हैं। संस्कृत के कुछ विद्वानों ने इसकी व्याख्या की है "सभ्यस्य भाव: कर्म वा सभ्यता।" संस्कृति का विकास निसर्ग द्वारा न होकर मानव द्वारा हुआ। अतः संस्कृति नैसर्गिक वस्तु न होकर मानवकृत कृत्रिम चीज़ है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, संसार में संस्कृतियों का विकास सामूहिक रूप में हुआ है। इसलिए संस्कृति एक व्यक्ति के उद्योग का फल न होकर सामूहिक उद्योग का फल है। फिर संस्कृति का विकास भी शनैः-शनैः हुआ है। उसमें परिवर्तन हुए हैं। संस्कृति सदैव एक रूप में नहीं रहती। वह स्थिर नहीं है। उसके कुछ तत्त्व चाहे सदा रहने वाले हों, परन्तु उसमें परिवर्तन होता ही रहता है। इस परिवर्तन का प्रधान कारण सामाजिक परिवर्तन है और यह परिवर्तन किस प्रकार हुआ यह इतिहास से ज्ञात होता है। हां, संस्कृति और सभ्यता दोनों का अन्योन्य सम्बन्ध अवश्य है, यथार्थ में संस्कृति और सभ्यता उन्नत अथवा विकसित मानव का दोरुखी चित्र है। जब सभ्यों का आचरण सामूहिक हो जाता है तब संस्कृति और सभ्यता का सच्चे रूप में निर्माण होता है।

संस्कृत देश और उनकी भिन्न-भिन्न संस्कृतियां

इस समय संसार में प्रधानतया छः संस्कृतियां मानी जाती हैं :—

(एक) आर्य (भारतीय) संस्कृति,
(दो) अनार्य (अफ्रीकी) संस्कृति,
(तीन) मंगोल (चीनी-जापानी) संस्कृति,
(चार) ईसाई (यूरो-अमेरिकी) संस्कृति,
(पांच) इस्लामी (अरबी-फारसी) संस्कृति, और
(छः) कम्युनिस्ट (रूसी) संस्कृति।

संस्कृति एक देश से दूसरे देश की, एक जाति से दूसरी जाति की, एक समुदाय से दूसरे समुदाय की, एक कुटुम्ब से दूसरे कुटुम्ब की, यहां तक कि एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति की भी पृथक् हो सकती है और एक संस्कृति सदा अच्छी ही हो यह नहीं, बुरी और अच्छी दोनों होती हैं। इसीलिए बुरी के साथ 'कु' और अच्छी के साथ 'सु' उपसर्ग काम में लाये जाते हैं।

सबसे प्राचीन संस्कृत देश

दुनियाँ के चार देश सबसे पुराने संस्कृत देश माने जाते हैं, भारत, मिस्र, चीन और यूनान। परन्तु भारत को छोड़कर अन्य तीन देशों की प्राचीन संस्कृति के आज उन देशों के जीवन में दर्शन नहीं होते। मिस्र, चीन और यूनान की प्राचीन संस्कृति या तो वहां के खंडहरों में दिखती है या वहां के अजायबघरों में दिखती है। भारत ही संसार का एकमात्र प्राचीनतम देश है, जहां की प्राचीनतम संस्कृति की परम्परा आज भी भारतीय जीवन में दृष्टिगोचर होती है।

भारतीय संस्कृति पर भारतीय भौगोलिक स्थिति का प्रभाव

जहां कोई भी प्राणी उत्पन्न होता और रहता है उस स्थान का उस पर प्रभाव पड़ता ही है। यह बात समूह या समुदाय के लिए भी होती है। भारतीय संस्कृति पर भारत की भौगोलिक स्थिति का सबसे पहले प्रभाव पड़ा।

हमारी पृथ्वी वैज्ञानिकों के मत से पहले सूर्य का ही एक अंग थी। सूर्य से एक टुकड़ा अलग हुआ। घूमते-घूमते वह हमारी पृथ्वी के रूप में गोल बन गया। परन्तु आरम्भ

में वह कुछ तरल था, ठोस नहीं, साथ ही वह तरल पदार्थ उबलती हुई अवस्था में था। जब वह ठोस बना, तब भी सूर्य के सदृश जलता हुआ। धीरे-धीरे उसमें ठंडक आयी। जैसे-जैसे ठंडक बढ़ती गयी वह तरल पदार्थ सिकुड़ता गया। उस सिकुड़न के कारण कहीं गहरे गढ़े बन गये और कहीं ऊंचाई हो गयी। इन ऊंचे हिस्सों में न जाने कितने ज्वालामुखी थे। अगणित भूकम्प होते और इन ज्वालामुखियों का नाना प्रकार का लावा फैलता। हवा चलती, बादल बनते और बादल से अवतरित वर्षा होती। गढ़ों में यह पानी इकट्ठा होना आरम्भ हुआ, जो आगे चलकर समुद्र बन गया। ऊंचे हिस्से पर्वतों में परिणत हुए। बहुत ऊंचाई पर बरफ जमा और निचले हिस्सों में वनस्पति-जगत् की उत्पत्ति हुई। आरम्भ के वृक्ष, लताएं और घास बहुत बड़े आकार के थे। इस उदभिज् सृष्टि के पश्चात् जीव का प्रादुर्भाव हुआ। पहला प्राणी जल में उत्पन्न हुआ। धीरे-धीरे जीव जगत् का विकास हुआ। हमारे यहां अवतारों के रूप में इस उत्पत्ति का सुन्दर वर्णन है—पहले मत्स्य, फिर कूर्म, तदुपरान्त बाराह, बाराह के बाद आधा मानव और आधा पशु नृसिंह, नृसिंह के पश्चात् पूर्ण मानव वामन, किंतु यह ठिंगना, इसके बाद शारीरिक दृष्टि से पूर्ण किन्तु मानसिक दृष्टि से महाक्रोधी परशुराम और अंत में शारीरिक और मानसिक दोनों ही दृष्टियों से पूर्ण रूप से विकसित राम तथा राम के बाद पूर्णावतार कृष्ण।

भूगर्भ शास्त्री पृथ्वी के जीवन के प्रधान रूप से चार युग मानते हैं। एक पृथ्वी का वह जीवन, जब पृथ्वी ठोस नहीं हुई थी। दूसरा जब पृथ्वी ठोस हो गयी, परन्तु वह वनस्पति अथवा जीव जगत् से रहित थी। तीसरा जब वनस्पति जगत् की उत्पत्ति हुई। और चौथा जब जीव जगत् की रचना हुई। इन्हीं प्राणियों का विकास होते-होते इन्हीं में से मानव का प्रादुर्भाव हुआ।

भारत का भी आरम्भ में यह रूप नहीं था। भारत का यह भौगोलिक रूप धीरे-धीरे बना है।

भौगोलिक इकाई की दृष्टि से हमारा आज का भारत एक देश है। परन्तु इस एकता में जैसी विविधता हमारे देश में है, वैसी शायद ही संसार के किसी देश में हो। मैं स्वयं संसार के प्रायः सभी देशों में घूमा हूं और यह मत अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर भी व्यक्त करता हूं। उत्तर में हिमालय, जिसका गौरीशंकर शिखर संसार का सबसे ऊंचा पर्वत शिखर है। बर्फ से ढंकी हुई हिम पर्वत की उत्तुंग श्रेणियां, उसके नीचे उत्तर प्रदेश की एकदम समतल भूमि, पश्चिम में राजस्थान का मरुस्थल, पूर्व में बंगाल की शस्य-श्यामला नमी वाली भूमि और दक्षिण का संकरा भाग, जिसे तीन ओर से समुद्र घेरे हुए है। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार का जलवायु। उत्तर में हिमालय की कंपकंपाती हुई शीत और दक्षिण में कभी भी पसीना न सूखे ऐसी गर्मी। पश्चिम के रेगिस्तान का अत्यन्त पाचनकारी जल और पूर्व का ऐसा पानी, जिसके कारण हाजमा दुरुस्त रखना कठिन। कहीं छहों ऋतुओं का आगमन और प्रस्थान, कहीं सदा ही निवास करने वाली शीत और कहीं हमेशा रहने वाला निदाघ।

भारतवर्ष का क्षेत्रफल मय पाकिस्तान के लगभग दस लाख वर्गमील है। पाकिस्तान को यथार्थ में भारत से पृथक् माना ही नहीं जा सकता। भारत का विभाजन हुआ संप्रदायवादी स्वार्थपरता की नीति से। राजनैतिक दृष्टि से आज भारत का यह भाग पाकिस्तान के रूप में चाहे अलग इकाई हो गया हो, पर भौगोलिक दृष्टि से उसे भारत का ही अंग मानना होगा। उत्तर से दक्षिण तक भारत की लम्बाई है करीब दो हजार मील और बर्मा जो यथार्थ में इसी

देश का एक अंग है और जिसे अंग्रेजों ने अपनी कुत्सित नीति के कारण उस समय बर्मा निवासियों की इच्छा के विरुद्ध इससे अलग किया (और फिर तो स्वार्थों का दौरदौरा होना स्वाभाविक था), उसे मिलाकर भारत की पूर्व से पश्चिम तक की चौड़ाई है लगभग पच्चीस सौ मील। रूस को यदि यूरोप से अलग कर लिया जाय तो शेष समूचा यूरोप भारतवर्ष से कुछ छोटा ही होगा। हिमालय पर्वत संसार का सबसे बड़ा और ऊंचा पर्वत है। उसकी लम्बाई है करीब 1,400 मील और उसके सर्वोच्च शिखर गौरीशंकर की ऊंचाई है 29,000 फीट। न जाने कितनी नदियां इस देश में बहती हैं। जंगलों की भी यहां कमी नहीं और समतल तथा उपजाऊ भूमि भी पर्याप्त है। भौगोलिक दृष्टि से भारत के तीन हिस्से किये जा सकते हैं। हिमालय और विन्ध्याचल के बीच में उत्तर भारत, जिसमें हिमालय जैसे पर्वत और दुआब जैसा मैदान। इसी में काश्मीर, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, उत्कल और असम आदि राज्य हैं। दूसरा भाग विन्ध्याचल और उसके आस-पास की वह भूमि है, जिसे मध्यदेश कहा जाता है। इसमें मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात आदि राज्य हैं। तीसरा भाग दक्षिण भारत कहलाता है जिसमें कर्नाटक, आन्ध्र, तामिलनाड और केरल राज्य हैं। भारत की भौगोलिक एकता का हमारे सभी प्राचीन ग्रन्थों में किसी न किसी प्रकार वर्णन आया है। यहां एक ही दृष्टांत देता हूं। वायु पुराण में कहा है :—

"उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।
वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः ।।"

भारत सदा सुसम्पन्न रहा है। भोज्य पदार्थों और जीवन की अन्य आवश्यक वस्तुओं की कमी न रहने के कारण भारतवासियों को जीवन से सम्बन्ध रखने वाली अन्य उच्च बातों पर भी विचार करने का अवकाश मिला। यहां की भौगोलिक स्थिति ने उसके इस चिंतन में सहायता पहुंचायी। और इस चिंतन ने उस संस्कृति का प्रादुर्भाव और विकास किया जो आज संसार की सर्वप्रधान संस्कृतियों में एक है। यदि हमें हिमालय, विन्ध्याचल आदि सदृश पर्वत, गंगा, यमुना, सिंधु, ब्रह्मपुत्र, कृष्णा और कावेरी के सदृश सरिताएं, दक्षिण में पूर्व से पश्चिम तक तीन ओर लहराता हुआ सागर और बीच की उपजाऊ सम भूमि न मिली होती, तो हमारा हाल अफ्रीका के सदृश होता तथा हमारी संस्कृति हब्शियों की संस्कृति के समान। हमारी संस्कृति में दो भौगोलिक पदार्थों का सबसे अधिक महत्व रहा है; ये हैं: हिमालय और समुद्र। हमारी संस्कृति के अध्यात्म स्तर का प्रधान केन्द्र हिमालय रहा, जहां हमारे ऋषि-महर्षियों ने निवास और तपस्या कर इस स्तर का विकास किया। समुद्र हमारी आधिभौतिक प्रगति का प्रधान साधन रहा। न जाने कितने प्राचीनकाल से हमने समुद्र यात्राओं द्वारा अपना व्यापार धन्धा बढ़ा अपनी आर्थिक उन्नति की। फिर संसार में हमारे इतने उच्च सम्मान का भी हमारा समुद्र एक प्रधान साधन रहा। अपने धर्म और संस्कृति के प्रसार के लिए हमने न जाने कितने प्राचीनकाल से सामुद्रिक यात्राएं कीं। पूर्वी एशिया में जो बृहत्तर भारत विकसित हुआ, वह इन्हीं समुद्री यात्राओं के कारण।

इसीलिए भारत महिमा में हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों और कवियों ने न जाने कितने गीत गाये हैं।

भारत में मानव

मनुष्य कैसे और कहां पैदा हुआ, इस सम्बन्ध में विद्वानों में बड़े मतभेद हैं। जैसा ऊपर लिखा है विकासवाद के सिद्धान्तों के अनुसार मनुष्य कुछ जीवधारियों से विकसित

होते-होते इस रूप का बना है। यह खोज लगभग सौ वर्ष पूर्व इंगलैण्ड के प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री डारविन ने की थी। इस मत को मानने वाले विद्वान् अब तक मानव की उत्पत्ति 'एप', 'गिब्बन', 'औरंगउत्तान' और 'चिपेंजी' इन चार तरह के बन्दरों की जाति से मानते थे। हाल ही में इंगलैण्ड के आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के प्राध्यापक सर एलिसटर हार्डी ने कहा है कि अपनी तीस वर्ष की खोज के बाद मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि आदि मानव समुद्री बन्दर था। परन्तु श्री हार्डी की यह खोज मनुष्य की उत्पत्ति के रहस्य पर कोई नया प्रकाश नहीं डालती। श्री डारविन की खोज के पश्चात् जिन चार तरह के बन्दरों की जाति से मनुष्य की उत्पत्ति की कल्पना की जाती थी, उनमें एक जाति और जुड़ गयी। मानव का वर्तमान रूप धीरे-धीरे विकसित हुआ है या मानव इसी रूप में जन्मा, इस विषय में जैसा ऊपर कहा है, विद्वानों में बहुत मतभेद है।

फिर मानव कब उत्पन्न हुआ इस विषय में भी पृथक्-पृथक् गणनाएं हैं। कुछ समय पूर्व ही एक जमाना था, जब पश्चिम के विद्वान् बाइबिल के इस कथन पर कि ईश्वर ने छः दिनों में यह सारी सृष्टि रची और उसे अभी कुछ हज़ार वर्ष ही हुए हैं, विश्वास करते थे।

इसी प्रकार पहला मानव कहां पैदा हुआ, इस सम्बन्ध में भी मतैक्य नहीं है। कुछ विद्वान् यह मानते हैं कि पहला मानव अफ्रीका के किसी भाग में हुआ था और कुछ इससे मतभेद रखते हैं। जो कुछ हो, आखिर मनुष्य कहीं न कहीं पैदा तो हुआ ही होगा, आकाश से तो इस रूप में टपका नहीं है।

मैं उन विद्वानों से सहमत हूं जो यह मानते हैं कि मानव किसी बन्दर अथवा वन-मानुष की जाति से पैदा न हो इसी रूप में जन्मा है।

वह कब पैदा हुआ, इस सम्बन्ध में मैं अपने ऋषि-मुनियों से सहमत हूं, जो इस सृष्टि को अनादि और अनन्त मानते हुए चले आ रहे हैं।

और मानव की उत्पत्ति कहां हुई, इस सम्बन्ध में मैं डाक्टर राधाकुमुद मुखर्जी के मत से सहमत हूं, जिन्होंने सन् 1952 के दिसम्बर में ग्वालियर में जो इतिहास कांग्रेस (हिस्ट्री कांग्रेस) का अधिवेशन हुआ था, उसके अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था कि आदि मानव पंजाब और शिवालक की उच्चभूमि पर पैदा हुआ। इस सम्बन्ध में डाक्टर मुखर्जी ने कुछ प्रमाण भी दिये थे।

क्या भारत में मानव जातियां बाहर से आयी हैं ?

ऊपर कहा गया है कि मैं यह मानता हूं कि आदि मानव की उत्पत्ति भारत में ही हुई। भारत की वर्तमान आबादी विद्वानों के मतानुसार छः नस्लों के सम्मिश्रण से बनी है—नेग्रीटो, आग्नेय (निषादी), मंगोल (किरात), भूमध्यसागरीय (द्रविड़), पश्चिमी (गोल सिर वाले) और नार्डिक (आर्य)।

भारत में जितनी जातियां निवास करती हैं, वे सब यहीं की हैं या बाहर से आयी हुईं, इस विषय में भी बड़ा मतभेद है। यह मतभेद आर्यों के सम्बन्ध में तो अत्यधिक है। मैं कम-से-कम इस देश में निवास करने वाली तीन जातियों को बाहर से आने वाली नहीं मानता—एक यहां के आदिवासी कोल किरात, भील आदि, दूसरे द्रविड़ और तीसरे आर्य। इनके

अतिरिक्त बाहर से यहां अन्य अनेक जातियां आयीं, इसमें सन्देह नहीं हो सकता। इनमें प्रमुख हैं—ईरानी, यवन, रोम के निवासी, शक, हूण, इस्लाम की अनुयायी कुछ जातियां और यूरोप के रहने वाले। यहां के आदिवासियों, द्रविड़ और आर्यों में काफी अन्तर है। अतः कुछ लोग यह मान बैठे हैं कि ये तीनों जातियां बाहर से आयी हैं। परन्तु जैसा पहले कहा गया है इस देश के एक स्थल से दूसरे स्थल में इतनी विभिन्नता हैं कि ये विभिन्न जातियां विभिन्न स्थानों की रहने वाली हैं, यह क्यों न मान लिया जाय और यह क्यों माना जाये कि ये जातियां बाहर से आयीं। हमारे देश का साहित्य इतना पुराना है, कम से कम आर्यों का, और उस साहित्य में इस प्रकार के विशद तथा विस्तृत प्राकृतिक वर्णन हैं कि यदि वे आर्य बाहर से आते तो कम से कम जहां से वे आये वहां का कोई न कोई प्राकृतिक वर्णन हमें उनके साहित्य में अवश्य मिलता। इन तीन जातियों के अतिरिक्त बाहर से जो जातियां आयीं, उनमें इस्लाम को मानने वाले कुछ लोगों को छोड़ और यूरोप से आने वाले कुछ लोगों को छोड़ शेष जातियां यहीं के निवासियों में घुल-मिल गयीं अथवा यहां की जातियां उन्हें पचा गयीं। नृतत्व शास्त्र (एन्थ्रोपोलौजी) के विद्वानों ने मानव का प्रथम विभाजन रंग के अनुसार किया है और मानव को प्रमुख रूप से तीन नस्लों में बांटा है। डाक्टर राधाकुमुद मुखर्जी का मत है कि एक नस्ल गोरे रंग वालों की है, जिन्हें हम काकेशियन कहते हैं। दूसरी नस्ल उन लोगों की है जिनके रंग में पीली झाईं होती है। इन्हें मंगोल कहा जाता है। तीसरी नस्ल के लोग काले रंग के होते हैं। ये इथोपियन जाति के हैं। बाकी रंग उन्हीं के मिश्रण और जलवायु के कारण हुए। भारत की आबहवा भिन्न-भिन्न प्रकार की है। कहीं की जलवायु ने गोरों को पैदा किया; कहीं की जलवायु ने कालों को। पीले रंगवाले यहां नहीं मिलते। परन्तु, गोरे और काले दोनों मिलते हैं। बाकी गेहुंए आदि रंगों के लोग इनके मिश्रण से हुए।

कुछ विद्वान् भाषा के आधार पर जातियों का विभाजन करते हैं। और चूंकि रूसी एवं पूर्वी योरोप की भाषाएं तथा संस्कृत एक ही परिवार की हैं, इसलिए कम से कम भारतीय आर्यों को भारत से बाहर से आया हुआ मानते हैं। परन्तु इन भाषाओं का सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद है और वह भारत में ही लिखा गया, यह सर्वमान्य है; इसलिए आर्यों को भारत में बाहर से आया हुआ न मानकर भारत के ही आर्य बाहर गये, यह क्यों नहीं माना जाता ?

मानव जीवन के विभाग

पुरातत्ववेत्ताओं ने मानव-जीवन निम्नलिखित विभागों में बांटा है :—

(1) पाषाण युग और उसका मानव,
(2) कांस्य युग और उसका मानव,
(3) ताम्र युग और उसका मानव, और
(4) इन तीनों युगों के पश्चात् का मानव।

यह बंटवारा उन मिले हुए आयुधों आदि के आधार पर किया गया है, जो संसार के भिन्न-भिन्न स्थानों से प्राप्त हुए हैं।

भारत में हमें पाषाण युग के आयुध अनेक स्थलों पर मिले हैं। पाषाण युग के पश्चात् और ताम्र युग के पूर्व कांस्य युग का यहां पता नहीं लगता। हां, सिंधु घाटी के भग्नावशेषों में कांसे की कुछ चीज़ें अवश्य मिली हैं, परन्तु यह पृथक् धातु नहीं थी। हमारे यहां उत्तर भारत में एक कहावत है—"सौ सत्ताईस कांसा, नहीं तो संन्यासा।" अर्थात् सौ तोले तांबे में

सत्ताईस तोला रांगा मिलने से कांसा बन जाता है। इस देश में पाषाण युग के पश्चात् उत्तर भारत में ताम्र युग आया और दक्षिण भारत में लौह युग। लौह युग का आरम्भ यद्यपि दक्षिण में हुआ, परन्तु लोहे का अधिक उपयोग उत्तर में ही हुआ। लौह धातु का वर्णन अथर्ववेद में भी आया है। सिकन्दर के आक्रमण के समय पंजाब के कुछ राजाओं ने सिकन्दर को लोहा भेंट भी किया था।

इस देश में संस्कृति और सभ्यता का सच्चा आरम्भ इसी ताम्र और लौह युग से हुआ और अब तक की खुदाई से जो वस्तुएं उपलब्ध हुई हैं, उसके सबसे पुराने चिह्न हमें सिंधु घाटी के भग्नावशेषों में मिलते हैं, जो आधुनिक वैज्ञानिकों के मत से इस देश की मानव सभ्यता के सबसे पुराने चिह्न हैं। सिंधु घाटी की सभ्यता का काल ईसा से चार हज़ार वर्ष पूर्व माना जाता है।

क्या सिंधु घाटी की सभ्यता ही भारत की प्राचीनतम सभ्यता थी ?

आधुनिक पुरातत्व वेत्ता अपनी ऐतिहासिक खोजों के लिए खण्डहर, शिलालेख और सिक्के इन तीन चीजों को ही प्रामाणिक मानते हैं। परन्तु, साहित्य को भी एक प्रमाण क्यों न माना जाय ? सिंधु घाटी के भग्नावशेषों को ही इस देश की सबसे पुरानी ऐतिहासिक सामग्री क्यों माना जाना चाहिए ? ऋग्वेद संसार की सबसे पुरानी पुस्तक है। इसे अब संसार के समस्त विद्वानों ने मान लिया है। मेसोपुटामिया में, जो दुनियां के प्राचीनतम सभ्य देशों में एक था, एक लेख मिला है जो इस बात पर प्रकाश डालता है कि ऋग्वेद दुनियां का सब से प्राचीन ग्रंथ है। यह ग्रंथ कब का है, इस सम्बन्ध में बहुत मतभेद है। मैक्समूलर ऋग्वेद को ईसा से बारह सौ वर्ष पूर्व का मानते हैं। एक-दूसरे पश्चिमी विद्वान् विंटरनित्ज़ ईसा से पच्चीस सौ वर्ष पहले का। ऋग्वेद के बाद जिन ब्राह्मण ग्रंथों की रचना हुई, उनका रचनाकाल लोकमान्य ने ईसा से चार हजार पांच सौ वर्ष पहले माना है। जर्मनी के एक विद्वान् जैकोबी ने ऋग्वेद के पश्चात् रचित कल्पसूत्रों का रचनाकाल ईसा से सेंतालीस सौ वर्ष पहले और ऋग्वेद का ईसा से छः हज़ार पांच सौ वर्ष पहले माना है। रामगोविन्द द्विवेदी ऋग्वेद का समय अठारह हज़ार वर्ष से पचास हज़ार वर्ष पूर्व मानते हैं। और अविनाशचन्द्र दत्त पचास हज़ार से पचहत्तर हज़ार वर्ष पूर्व। परन्तु ऋग्वेद से ही ज्ञात हो जाता है कि हमारी संस्कृति उससे भी पुरानी थी; तभी तो ऋग्वेद के सदृश ग्रन्थ का निर्माण हो सका। ऋग्वेद के पश्चात् स्मृतियों का समय आया। स्मृतियों के बाद इतिहास-पुराण का, परन्तु पुराण शब्द का अर्थ ही पुराना है। पुराणों का वर्तमान रूप चाहे वेद, स्मृति और रामायण, महाभारत इतिहास ग्रन्थों के पश्चात् का हो, परन्तु वे किसी न किसी रूप में वेदों के समय भी मौजूद थे। अथर्ववेद में पुराण शब्द का प्रयोग इतिहास शब्द के साथ हुआ है :—

"तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन् ।।११।।
इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां
च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ।।१२।।"

(अथर्ववेद १५।६।११–१२)

इस प्रकार अन्य विद्वानों के मतानुसार मैं यह मानता हूं कि हमारी आरम्भिक संस्कृति का आधार श्रुति, स्मृति और पुराण थे। हमारे यहां वेदों को 'श्रुति' कहा गया है। जिसका अर्थ यह हुआ कि वेद सुने जाते थे। लिखने की कला बहुत बाद आयी और उस कला के

पूर्व का ज्ञान शब्दों में था, पट पर नहीं। सिंधु घाटी के भग्नावशेष चाहे ईसा के पूर्व चार हज़ार वर्ष पुराने ही क्यों न हों, इन भग्नावशेषों के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि सिंधु घाटी की सभ्यता इस देश की प्राचीनतम सभ्यता थी। ऊपर कहा गया है कि इस संसार के चार देश सबसे पुराने हैं—भारत, मिस्र, चीन और यूनान। भारत का इतिहास सिंधु घाटी से कहीं प्राचीन है। मैं तो यहां के इतिहास की खोज के लिए तीन प्रकार की सामग्री को प्रामाणिक मानूंगा। यहां का साहित्य, यहां के पुराने खण्डहर, शिलालेख, सिक्के इत्यादि और बाहर के जो यात्री इस देश की यात्रा के लिए आये, उनके द्वारा किया गया भारत का वर्णन।

साहित्य को मैं सबसे पुरानी सामग्री मानता हूं। अतः श्रुति, स्मृति और पुराणों का काल सिंधु घाटी की सभ्यता से कहीं पुराना है, चाहे उस समय की वस्तुएं हमें अब तक उपलब्ध न हुई हों। फिर यह बात भी मेरी समझ के बाहर है कि सिंधु घाटी की सभ्यता का पुराने सुमेर और बाबुल आदि देशों से सम्बन्ध क्यों माना जाता है। वहां के मिट्टी के बर्तनों और उनकी चित्रकारी आदि कुछ बातों में सुमेर, बाबुल आदि देशों की इसी प्रकार की चीज़ों की समानता के कारण सिंधु घाटी की सभ्यता का सुमेर और बाबुल आदि देशों से सम्बन्ध मानना कोई उचित बात नहीं जान पड़ती। सिंधु घाटी की खुदाई में जो मूर्तियां शिव, पृथ्वी माता आदि की मिली हैं वे भारत के देवता हैं, सुमेर, बाबुल आदि के नहीं। अतः सिंधु घाटी की सभ्यता के लिए यह कहना कि वह भारत के प्राचीन आर्यों की सभ्यता न थी, यह बात युक्तिसंगत नहीं ठहरती। इसके सिवा जैसा ऊपर कहा गया है, मैं तो सिंधु घाटी के भग्नावशेषों को भारत की भी प्राचीनतम सभ्यता के चिह्न नहीं मानता। भारत की प्राचीनतम सभ्यता और संस्कृति सिंधु घाटी की सभ्यता से कहीं अधिक पुरानी थी।

भारतीय संस्कृति के प्रधानतत्त्व

भारतीय संस्कृति का मुख्य ध्येय है, 'आत्मानं विद्धि' अर्थात् अपने को जानो। भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता सत्य का अनुसंधान करने का प्रयत्न है; और इसके लिए किसी भी बन्धन से रहित चिंतन। इसीलिए जो सहिष्णुता हमें भारतीय संस्कृति में दृष्टिगोचर होती है वह अन्य किसी संस्कृति में नहीं।

संसार की भिन्न-भिन्न संस्कृतियां वहाँ की विचारधाराओं का परिणाम हैं। मूल में चाहे उनमें एकता हो, पर उनके बाह्य रूप में भिन्नता होना स्वाभाविक है। भारतीय संस्कृति जिस विचारधारा से निकली, उस विधारधारा का मूल अध्यात्म है। अध्यात्म का दिग्दर्शन जिस शास्त्र से होता है, वह दर्शन शास्त्र है। भारत का दर्शनशास्त्र समस्त संसार के दर्शन शास्त्रों में सबसे ऊंचा रहा है, आज भी है। भारतीय दर्शनशास्त्र सब में अपना और अपने में सबका दर्शन कराता है। उसका सुन्दर निचोड़ भगवद्गीता के एक श्लोक में हुआ है:—

"यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।"

भारतीय संस्कृति धर्मप्राण संस्कृति है। धर्म शब्द का हमारे यहां बड़ा व्यापक अर्थ है। 'रिलीजन' अथवा 'मजहब' धर्म शब्द के ठीक अनुवाद नहीं हैं। जिस प्रकार संस्कृति की विविध व्याख्याएं हैं उसी प्रकार हमारा धर्म शब्द व्यापक होने के कारण धर्म शब्द की

भी विभिन्न व्याख्याएं हैं। धर्म शब्द में मानव का व्यष्टि और समष्टि समस्त जीवन आ जाता है। धर्म शब्द 'धृ' (धारण करना) धातु में 'मय' प्रत्यय लगाने से बनता है। अर्थ हुआ जो धारण करे अर्थात् 'धारणाति नाम धर्मं'। अतः धर्म उन सिद्धान्तों का एकीकरण है, जिनसे मानव और मानव समाज अपने अस्तित्व को धारण करता है। यह अस्तित्व तभी टिक सकता है, जब मनुष्य और उसका समाज सन्मार्ग में चले। इस सन्मार्ग की भी हमारे यहां न जाने कहां-कहां कितनी-कितनी व्याख्याएं की गयी हैं, परन्तु मुझे सबसे अच्छी और व्यापक व्याख्या वैशेषिक दर्शन के प्रणेता कणाद की जान पड़ी। वे कहते हैं "यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः" अर्थात् जिससे अभ्युदय और निश्रेयस सिद्ध हो, वह धर्म है। अभ्युदय से लौकिक और निश्रेयस् से पारलौकिक सिद्धि की उपलब्धि होती है।

धर्म और संस्कृति दोनों का संस्कारों से सम्बन्ध है, पर दोनों में एक अन्तर है। धर्म का मूल आधार वेद, वेदांग, उपनिषद्, स्मृति, शास्त्र, रामायण, महाभारत और पुराण आदि हैं। संस्कृति का आधार परम्परा भी है। धर्म देश विशेष अथवा जाति विशेष अथवा समाज विशेष से निरपेक्ष भी रह सकता है, किन्तु संस्कृति नहीं। जहां तक हमारे धर्म का सम्बन्ध है वह तो सब धर्मों को श्रद्धा की दृष्टि से देखता है। और कहता है 'सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति।'

हमारी संस्कृति का विकास हिमालय के सदृश पर्वतों, वनों और अरण्यों में हुआ है। अतः वह प्रकृति की गोद में पली है। हमारे ऋषि-मुनियों ने विभिन्न दिखने वाली इस सृष्टि में एकता के दर्शन किये थे। हज़ारों वर्षों के बाद भी आज के वैज्ञानिक तक उसके आगे नहीं जा पाये हैं। यह समस्त सृष्टि यथार्थ में एक ही तत्त्व है, यह हमारे मनीषियों ने घोषित किया। आज के वैज्ञानिक भी यथार्थ में समस्त सृष्टि एक ही तत्त्व है, यह मानते हैं। कुछ सूक्त इस एकता का सुन्दर वर्णन करते हैं—"अहं ब्रह्मास्मि" अर्थात् मैं ब्रह्म हूं, "तत्त्वमसि", याने तुम भी वही हो, "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" अर्थात् सब कुछ ब्रह्म है। अतः "वसुधैव कुटुम्बकम्" समस्त सृष्टि परिवार है। इसलिए हमारे ऋषि-महर्षियों ने कहा था—

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।"

और

"आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पंडितः।"

हमारी धर्मप्राण संस्कृति आध्यात्मिकता की नींव पर खड़ी है, परन्तु जो लोग यह मानते हैं कि हमने केवल आकाश की ओर देखा है और भूमि की ओर नहीं, वे बड़ी गलती करते हैं। वेदों आदि के अनेक वाक्य इसके प्रमाण हैं।

> "शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु। शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः, शमु सन्त्वापः शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे शं नो वातः पवतां शं नस्तपतु सूर्यः। शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु। अहानि शं भवन्तु नः शं रात्रीः प्रतिधीयताम्॥"

अर्थात्—जिसके विशाल नेत्र हैं, ऐसा सूर्य उदित होकर हमारा कल्याण करे। निश्चल पर्वत और नीर पूरित नदियां हमारे लिए शुभ हों। द्विपद और चतुष्पद सभी जीवों का मंगल हो। सूर्य मंगल के लिए उदित हों, पवन मंगल के लिए संचरित हो, मेघ मंगल के लिए वर्षा करें, दिन और रात्रि दोनों हमारे लिए मंगलदायी हों।

यजुर्वेद (अध्याय ३६, मंत्र १८) उसी प्रकार चतुर्दिक शांति की कामना करता है—

"द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व ँ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ।"

अर्थात्—गगन शान्तिपूर्ण हो, समूचा आकाश शान्तिमय हो, पृथ्वी शान्तिमयी हो, जल शान्तिपूर्ण हो, तरुलताएं शान्तिमय हों, संसार के सब देवता शान्तिमय हों, ब्रह्म शान्तिमय हों, सभी कुछ शान्तिपूर्ण हो, सर्वत्र शान्ति ही शान्ति हो, मैं स्वयं उस शान्ति का भागीदार बनूं ।

तैत्तिरीय उपनिषद् (१,१,१) कहता है:—

"ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै । ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।"

अर्थात्—सभी साथ मिल अपनी रक्षा करें, सब साथ आहार करें, मिल-जुल कर परिश्रम करें, उद्योग, व्यापार और वीरता के कार्य करें । हमारा ज्ञानोपार्जन तेजमय हो । कभी एक-दूसरे से बैर-भाव न रखें । शान्ति हो । शान्ति हो । शान्ति हो ।

एक ओर भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिक नींव पर दार्शनिक बातों का चरम-उत्कर्ष हुआ और दूसरी ओर आधिभौतिक नींव पर वैज्ञानिक और कलात्मक बातों का । दर्शन में आज भी भारत संसार का बेजोड़ देश है । विज्ञान में प्राचीनकाल में ज्योतिष, गणित, योग-विचार, भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, प्राणिशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, आयुर्वेद आदि अनेक वैज्ञानिक खोजें हुईं । ललित कला के पांच मोटे भाग हैं : स्थापत्य-कला, मूर्ति कला, चित्रकला, संगीतकला और काव्यकला । इन पांचों कलाओं का भी हमारे देश में पूर्णोत्कर्ष हुआ ।

आध्यात्मिक क्षेत्र के सिवा मानव ने अपनी ज्ञानशक्ति के द्वारा जो कुछ उपार्जित और अर्जित किया है, उसके मोटे रूप से दो विभाग किये जा सकते हैं—एक विज्ञान और दूसरा कला । दोनों में ही प्राचीन भारत चरम सीमा को पहुंचा था ।

हमारी संस्कृति ने यदि केवल आकाश की ओर ही देखा होता और हम विचार ही विचार में निमग्न रहते तो हमें सभ्यता के हजारों और सैकड़ों वर्ष पुराने आधिभौतिक वस्तुओं के नमूने इस देश में देखने को न मिलते । सिन्धु घाटी की सभ्यता के भग्नावशेष, सांची और सारनाथ के स्तूप, दक्षिण के मदुरा, रामेश्वर, श्रीरंग आदि के विशाल मंदिर, चित्तौड़ का विजय स्तम्भ, अजन्ता की चित्रकारी, मध्य भारत के खजुराहो के मन्दिर, एलोरा और एलीफेण्टा की गुफाएं आदि-आदि न जाने कितनी वस्तुएं आज भी हमारे आधिभौतिकता के प्रेम की प्रत्यक्ष निशानी के रूप में खड़ी हैं । फिर, व्यक्तिगत जीवन में भी आधिभौतिक रहन-सहन का हमारे यहां कितना महत्त्व रहा है । स्नान, अनुलेपन, तिलक, कश संवारना, वस्त्र-आभूषण, भोजन, गृह रचना और व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्ध रखने वाली बातों की ओर हमारे यहां सदा ध्यान दिया गया है । राजनैतिक संस्थाएं, राजतंत्र, गणतंत्र, कृषि, उद्यान, पशुपालन, व्यापार, उद्योग-धन्धे इन सबका चरम-उत्कर्ष क्या यह नहीं बताता कि हम भौतिक जगत् को भी आध्यात्मिक संसार से कम महत्त्व नहीं देते थे । हमारी इस समस्त संस्कृति और सभ्यता का दर्पण जो साहित्य है, वह केवल अध्यात्म से ही सम्बन्ध नहीं रखता । एक

ओर यदि हमारे यहां वेद और वेदान्त के अद्वितीय दार्शनिक ग्रंथ हैं तो दूसरी ओर रामायण और महाभारत के सदृश इतिहास तथा अनेक कवियों और नाटककारों के रसमय काव्य एवं नाटक। दर्शनशास्त्र तक में यदि शंकराचार्य के सदृश आचार्य ने कभी यह कहा कि 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' और अपने वाद का नाम 'मायावाद' रखा तो वल्लभाचार्य के सदृश आचार्य ने उसका खंडन कर कहा कि जब सब कुछ ब्रह्म है तो जगत् मिथ्या कैसा ? वह भी सत्य है और 'मायावाद' के स्थान पर उन्होंने अपने वाद का नाम 'ब्रह्मवाद' रखा। हां, हम अधिभूत में ही फंसे नहीं रहे और अध्यात्म का स्थान हमारे यहां अधिभूत से ऊंचा भी रहा। यदि हम यह कहें तो शायद अनुपयुक्त न होगा कि पाश्चात्य देशों में सभ्यता का स्थान संस्कृति से ऊंचा है और भारत में संस्कृति का सभ्यता से ऊंचा।

संक्षेप में भारतीय संस्कृति की निम्नलिखित विशेषताएं हैं :—

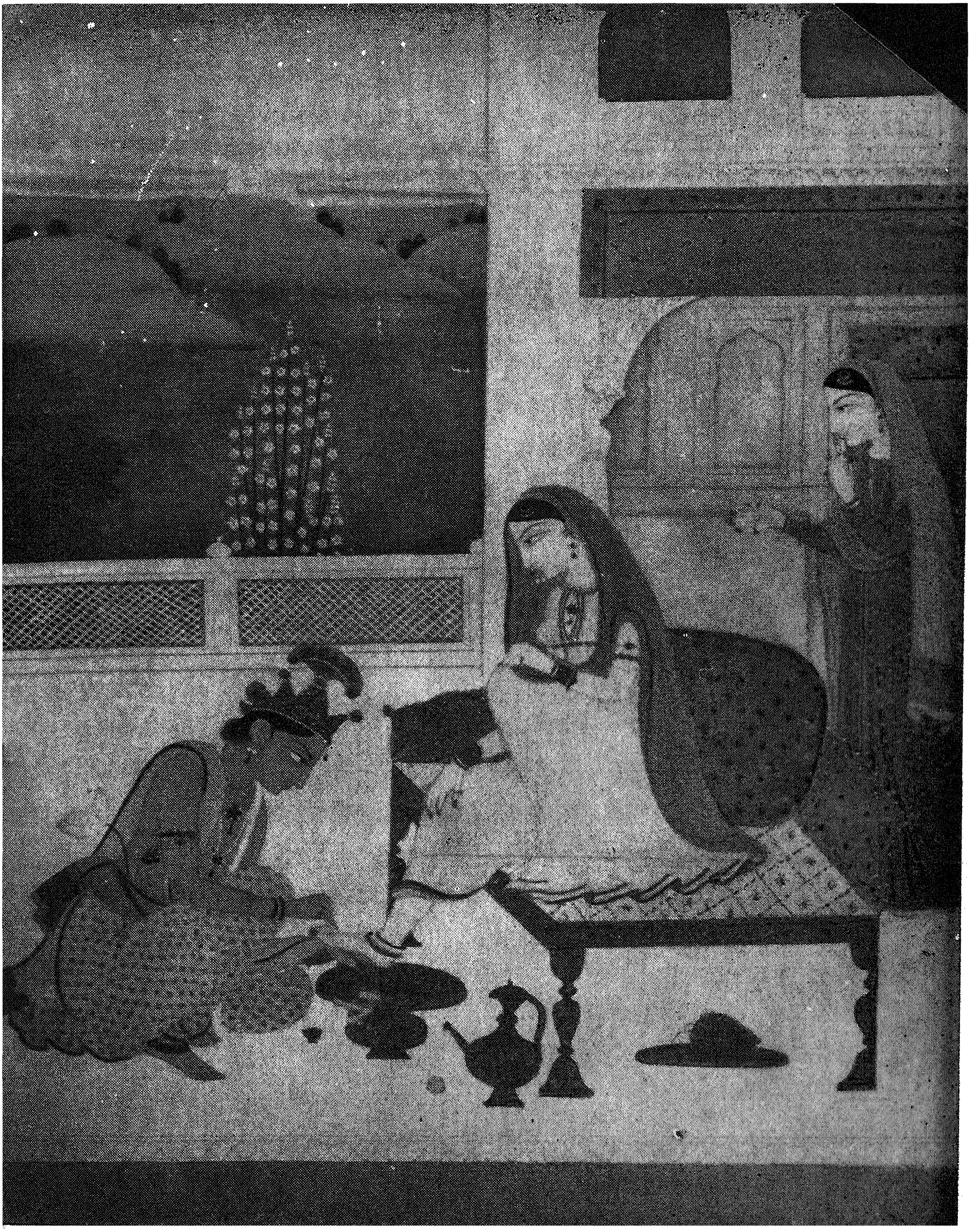
आज के संसार के देशों में केवल भारत ही ऐसा देश है, जहां के सामाजिक जीवन में भारत की प्राचीन संस्कृति की परम्परा मौजूद है।

इसके इस दीर्घ जीवन में कुछ ऐसे सिद्धान्त हैं, जिससे वह अमर हो गयी है। वे सिद्धान्त हैं : (क) उसका अध्यात्म की नींव पर अवलम्ब। (ख) सत्य का अनुसंधान करने का प्रयत्न और इसके लिए किसी भी बन्धन से रहित चिंतन, जो इस संस्कृति में सहिष्णुता लाया। (ग) अन्य संस्कृतियों की ग्राह्य वस्तुओं को ग्रहण करने की शक्ति तथा उन्हें अपने में लीन करने की ताकत। (घ) परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तनों की मान्यता और इस परिवर्तन में प्रगतिशीलता। (च) अहिंसा-प्रियता; समस्त सृष्टि यथार्थ में एक ही तत्त्व है, इस खोज के बाद यदि मैं वही हूं जो तुम और तुम वही हो जो मैं और समस्त सृष्टि वही है जो तुम और मैं, तब अहिंसा अपने आप ही आ जाती है; क्योंकि कोई भी अपनी ही हिंसा में तो प्रवृत हो नहीं सकता। (छ) जीवन के समस्त क्षेत्रों को उन्नत करने की ओर उसका ध्यान, जिसमें आध्यात्म और अधिभूत सभी आ जाते हैं।

भारतीय संस्कृति का व्यावहारिक पक्ष

यदि एक ओर भारतीय संस्कृति धर्मप्रधान है तो दूसरी ओर कर्मप्रधान भी। जैसा पहले कहा गया है, सृष्टि में मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ स्थान उसकी ज्ञानशक्ति के कारण है। निसर्ग ने मानव को जो ज्ञान-शक्ति दी है वह अन्य किसी प्राणी को नहीं। इस शक्ति द्वारा उसने जो कर्म किये उससे उसका विकास हुआ, संस्कृति इसी ज्ञान वाले कर्म का विकसित रूप है। मानव के व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों प्रकार होते हैं; व्यक्तिगत ने पहले परिवार बनाया और परिवारों के समुदायों ने समाज। अधिकांश विद्वानों की राय है कि पारिवारिक जीवन की सर्वप्रथम व्यवस्था भारत में ही हुई। मैं इस मत से सहमत हूं। भारत में परिवार समाज की एक इकाई माना जाता था। आज भी यही बात है। और अब तो समस्त सभ्य संसार में परिवार का वही स्थान है। भारतीय संस्कृति की वर्ण-व्यवस्था और आश्रम प्रणाली इस संस्कृति में कर्म की प्रधानता के द्योतक हैं। वर्ण व्यवस्था आगे चलकर चाहे जन्म के अनुसार हो गयी हो, पर आरम्भ में वह कर्म के अनुसार थी।

हमारे यहां आध्यात्मिक मोक्ष जीवन का आदर्श होते हुए भी उसकी प्राप्ति का प्रधान साधन आधिभौतिक शरीर माना जाता था। और इसीलिए कहा गया था—"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्"। मोक्ष की प्राप्ति के लिए जीवन को विशिष्ट मार्ग से चलाना



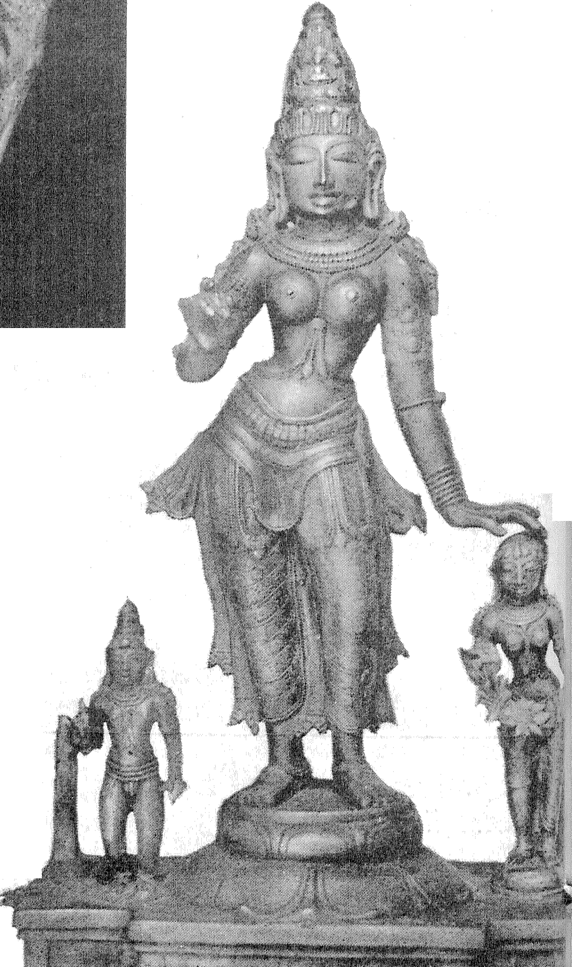
राधा के महावर
(कांगड़ा, अठारहवीं शती)

यह तूलिका-विलास और यह लाक्षारस यह राग

ये देवियां प्रेम प्रतिमाएं,
और मिथुन अनुराग



दम्पति (मिट्टी का फलक), कलकत्ता



यक्षी अम्बिका (मद्रास)

पड़ता था। मानव सामाजिक प्राणी है, परन्तु समाज व्यक्तियों का समूह है। अतः उत्कृष्ट सामाजिक रचना के लिए व्यक्तिगत जीवन की उच्चता आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य मानी गयी थी।

इसी के प्रसंग में 'कर्मणा वर्ण-व्यवस्था' की बात आ जाती है।

सामाजिक व्यवस्था और उसकी सर्वोन्नति के लिए भारतीय संस्कृति में प्राकृतिक गुणानुसारी कर्मों के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों की व्यवस्था हुई है। इसके मूल में हमारी संस्कृति की जन्मान्तर वाद की मान्यता का भी विशेष हाथ है। मीमांसा का सिद्धान्त है—'कर्मबीजं संस्कारः' तथा 'तन्निमित्ता सृष्टिः'। याने संसार ही कर्म का बीज है और वही सृष्टि का कारण। वर्ण-व्यवस्था के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए सन् 1920 में गांधीजी ने 'यंग इंडिया' पत्र में लिखा था—

"चातुर्वर्ण्य के पीछे किसी के उद्दाम श्रेष्ठ होने की भावना नहीं है, बल्कि वह आत्म संस्कृति की विभिन्न पद्धतियों के आधार पर किया गया वर्गीकरण है। सामाजिक स्थैर्य और उत्कर्ष की यही सबसे अच्छी व्यवस्था बन सकती थी। प्रत्येक वर्ण पवित्र जीवन के विशिष्ट मार्ग पर चलने वाले सब कुनबों का एक समूह होता है।······आनुवंशिक परम्परा के सिद्धान्त में उसकी निष्ठा होती है।······वर्ण भेद उच्चता या नीचता का कोई संकेत नही करता। विभिन्न दृष्टिकोण रखने वालों के विभिन्न जीवनमार्गों का होना इसमें मान्य है।"

महात्मा गांधी पूर्व जन्म के संस्कार और आनुवंशिक संस्कारों को भी मानते थे। यही नहीं, वर्ण-व्यवस्था को उन्होंने मानव के 'सहज धर्म' की संज्ञा दी थी। उनका मत था यदि ऐसा न माना जाय तो वर्ण-व्यवस्था का फिर कुछ अर्थ ही नहीं रह जाता। उन्होंने स्पष्ट कहा, "मैं वर्णाश्रम धर्म को मानता हूं"।

प्राचीन ऋषि-महर्षियों और आचार्यों ने हमारी संस्कृति में वर्ण-व्यवस्था और आश्रम प्रणाली की जो स्थापना की, उसके मूल में कुछ विशिष्ट उद्देश्य थे। मनुष्य मात्र के ऐंहिक तथा पारलौकिक कृत्यों की पूर्ति का एक सुगम साधन उन्होंने इन्हें बनाया। उनकी इस वर्ण-व्यवस्था का उद्देश्य था, निर्धारित सीमा के भीतर निर्धारित लौकिक पुरुषार्थों के द्वारा सभी को जीविकोपार्जन के साधन सुलभ कर समाज का हित सम्पादन करना।

आश्रम प्रणाली में तो कर्म प्रमुख था ही; ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास सब आश्रमों के कर्म स्पष्ट रूप से निर्धारित थे। ब्रह्मचर्याश्रम में गुरु और शिष्य के सम्बन्ध की उत्कृष्टता और ब्रह्मचर्यव्रत पालन कर समस्त जीवन की दीक्षा का प्रावधान था।

गृहस्थाश्रम में पति, पत्नी, पिता-पुत्र, लघु-ज्येष्ठ भगिनी और भ्राता आदि के परस्पर आदर्श सम्बन्ध और व्यवहार आदि निर्दिष्ट किये गये हैं। जिनमें स्त्री के लिए पातिव्रत्य धर्म तथा सतीत्व की श्रेष्ठता और पुरुष के लिए पत्नी को अपनी अर्धांगिनी एवं साक्षात् गृह-लक्ष्मी रूप में मानना और पुत्र के लिए 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव' आदि प्रतिपादित किया गया है। रामायण में नारी के रूप में सीता को एक आदर्श नारी और पुरुष के रूप में राम को एक आदर्श पुरुष निरूपित किया गया है। साथ ही भ्रातृ प्रेम और परस्पर के सम्बन्धों की दृष्टि से राम का तथा लक्ष्मण और भरत का चरित्र हमारी सांस्कृतिक संपदा है। भरत की, राम की और लक्ष्मण की प्रत्येक क्रिया में स्वार्थ-त्याग का जो भाव हमें दिखायी देता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। परस्पर सभी के क्रिया-कलाप, त्याग की भावनाओं से भरे हुए हैं। वन

जाते हुए राम की प्रसन्नता, उनका प्रत्येक संकेत और चेष्टा भरत को राज्य दिलाने में है और भरत का प्रयत्न ही नहीं संकल्प राम को राज्य दिलाने में। इसी प्रकार द्वापर में पाण्डवों का बान्धव प्रेम, जिसमें सौहार्द, सहिष्णुता, श्रद्धा और संकल्प, तथा कर्त्तव्य अपने उच्चतम रूप को पहुंचे थे। ऐसी बातें हमें भारतीय संस्कृति के सिवा अन्यत्र देखने को नहीं मिलतीं।

आश्रम व्यवस्था में गृहस्थाश्रम के पश्चात् जीवन की तृतीय अवस्था में वानप्रस्थ और चतुर्थ अवस्था में संन्यास आश्रम की व्यवस्था थी। गार्हस्थ्य-जीवन के विविध व्यापार-व्यवहारों में प्राय: बुद्धि वैषम्य हो जाता है। अत: इस जाल-जंजाल से मुक्ति दिलाने के लिए, चित्त शुद्धि और उसकी एकाग्रता के लिए भोग-वैराग्य, सम्पत्ति-त्याग की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए पहले वानप्रस्थ आश्रम में भौतिक आसक्ति से निवृत्ति की दीक्षा लेनी पड़ती थी, तदुपरान्त तपश्चर्यापूर्ण संन्यास आश्रम में प्रवृत्त होकर भौतिक वासनाओं का परित्याग कर निवृत्ति पूर्ण जीवन बिताकर मोक्ष का यत्न किया जाता था।

इस दृष्टि से हमारी संस्कृति के इन चारों आश्रमों में—ब्रह्मचर्य में स्वार्थ और परार्थ का परिचय तथा व्यवहार का ज्ञान कराकर प्रवृत्ति सिखलायी जाती थी, गृहस्थाश्रम में प्रवृत्ति करायी जाती थी और वानप्रस्थ आश्रम में निवृत्ति सिखलाकर तथा संन्यास आश्रम में निवृत्ति कराकर मोक्ष प्राप्ति का यत्न होता था। कई व्यक्ति ब्रह्मचर्य के पश्चात् गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रमों में न जा सीधा संन्यास ग्रहण कर लेते थे, परन्तु इसे प्रोत्साहन नहीं दिया जाता था। ऐसे व्यक्ति अपवाद ही माने जाते थे। मानव के स्वस्थ और संतुलित जीवन विकास क्रम में ये क्रमिक कक्षाएं थीं, जिन्हें एक-एक कर पार करना स्वस्थ व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक था। इस प्रकार हमारी इस सामंजस्य-पूर्ण संस्कृति के द्वारा व्यक्ति के लौकिक और पारलौकिक दोनों ही पक्षों का हित साधन होता था। इस प्रकार के व्यक्तियों के परिवार बने थे और ऐसे परिवारों का समाज।

जिस प्रकार हमारे यहां चार वर्ण और चार आश्रम थे उसी प्रकार जीवन के चार आदर्श थे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। ब्रह्मचर्याश्रम से लेकर संन्यास तक की शृंखला में भारतीय संस्कृति का पथिक सदाचारी जीवन यापन कर सहज ही इन चार पदार्थों को पा जाता है, ऐसी हमारी मान्यता है। हमारी संस्कृति में गांधी जी के साधन और साध्य की पवित्रता का सिद्धान्त मान्य है; यदि साधन पवित्र हैं तो पवित्र साध्य की प्राप्ति निश्चित है।

इस कर्म मार्ग में प्रवृत्त होने वाले प्रत्येक व्यक्ति का तीन ऋणों से मुक्ति पाना अभीष्ट होता था। ये तीन ऋण थे—ऋषिऋण, देवऋण, और पितृऋण। इन्हें यज्ञ भी कहा गया है।

ऋषिऋण से मुक्ति का मार्ग विद्या अध्ययन, देवऋण से मुक्ति का मार्ग कर्त्तव्य पालन और पितृऋण से मुक्ति का मार्ग पुत्र प्रजनन था। ब्रह्मचर्याश्रम में वेद-अध्ययन, मनन, चिंतन और स्वाध्याय कर सदाचारी जीवन की दीक्षा से व्यक्ति ऋषिऋण से मुक्त होता था, तदुपरांत उसी शिक्षा, स्वाध्याय और सदाचार के आसरे कर्त्तव्य यज्ञ की आहुतियों द्वारा देवऋण से मुक्त होता था। यज्ञ का अर्थ केवल मंत्रोच्चार कर हवन में आहुति डालना नहीं था, अपितु शास्त्रानुकूल, धर्मानुकूल आचरण और कर्त्तव्यनिष्ठा थी, जो जीवन की लम्बी मंजिल में कभी डिगे नहीं। भगवान् श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में यज्ञ का यही अर्थ किया है। कर्त्तव्य पूर्ति और कर्त्ता के भाव के सम्बन्ध में गीता में अनासक्ति योग का उपदेश भी दिया गया है। फलेच्छा

से रहित हो इस प्रकार का मनसा, वाचा, कर्मणा, कर्त्तव्य-यज्ञ का ऐसा विधान संसार में कहीं अन्यत्र नहीं मिलता। इसीलिए भगवद्गीता दार्शनिक दृष्टि से संसार का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ माना जाता है। तीसरे पितृऋण की मुक्ति के लिए अपनी परम्परा के निर्वाह के हेतु पुत्र-प्राप्ति अभीष्ट होती थी। पुत्र उत्पन्न कर माता-पिता उसे इन संस्कारों से दीक्षित कर पहले वानप्रस्थ में तदुपरान्त संन्यासाश्रम में प्रवृत्त होते थे। पुत्र अपने दायित्वों का निर्वाह कर अपने पिता के मार्ग का अनुसरण करता था और इस तरह इसमें सृष्टि रचना का सिद्धान्त मान्य था।

आर्य संस्कृति के अनुसार वेद, स्मृति, पुराण आदि में सब मिलाकर 42 संस्कारों का उल्लेख हुआ है, जिनमें 16 प्रधान हैं। इनकी मीमांसा वेद के 'कर्म मीमांसा' दर्शन में हुई है। संस्कार की परिभाषा यह है, जिससे दोष दूर हों और गुणों का उत्कर्ष हो। इसी मत का प्रतिपादन करते हुए श्रीमद् शंकराचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य में लिखा है :—

"संस्कारो हि नाम संस्कार्यस्य गुणाधानेन
वा स्याद्दोषापनयनेन वा ।।"

अर्थ हुआ—संस्कारित वस्तु में गुणों का आधान और दोषों को दूर करने की क्रिया होती है। संस्कार को कर्म का बीज कहा गया है। बीज से जैसे वृक्ष की उत्पत्ति होती है वैसे ही संस्कार से कर्म उत्पन्न होता है। इस सम्बन्ध में मनुस्मृति में उल्लेख हुआ है :—

"गार्भैर्होमैर्जातकर्म चौडमौंजीनिबन्धनैः ।
बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते ।।
स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः ।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनः ।।"

(मनु० २।२७-२८)

अर्थात्—गर्भ को शुद्ध करने वाले होम से, जातकर्म, चूड़ाकर्म, मौंजीबन्धन आदि संस्कारों से गर्भजनित दोष दूर हो जाता है। स्वाध्याय, व्रत, होम, वेदत्रयी का अध्ययन और तदनुसार कर्म, देव ऋषि पितृ तर्पण, प्रजोत्पादन, पंच महायज्ञ तथा ज्योतिष्टोमादि यज्ञों के द्वारा मानव देह ब्रह्म प्राप्ति का साधन बनता है। देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्य यज्ञ और ब्रह्मयज्ञ को पंच महायज्ञ कहा गया है।

हमारे ये संस्कार गर्भाधान से प्रारम्भ होते हैं और अंतिम संस्कार संन्यास पर समाप्त होते हैं। इन संस्कारों में तीन प्रधान हैं—उपनयन, समावर्तन और विवाह। व्यक्ति के जीवनोत्कर्ष की दिशा में यज्ञोपवीत और विवाह इन दो संस्कारों का विशिष्ट महत्त्व है। यज्ञोपवीत को जीवन के आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक अनुष्ठान की प्रथम आहुति माना गया है। इसके पश्चात् समावर्तन है। विवाह गृहस्थ जीवन के प्रवृत्ति मार्ग का सबसे बड़ा संस्कार है। इसमें स्त्री और पुरुष दोनों के अलग-अलग उत्तरदायित्व हैं और पृथक्-पृथक् कर्त्तव्य निश्चित किये गये हैं। इन उत्तरदायित्वों और कर्त्तव्यों की दौड़ न केवल योग्य जीवन के लिए होती थी, वरन् अगले अनेक जन्म-जन्मान्तरों के लिए। इस दृष्टि से विवाह भारतीय संस्कृति के मानव जीवन का एक ऐसा आदर्श संस्कार था, जिसमें ऐहलौकिक और पारलौकिक प्राप्तियों के प्रयत्न तो निहित थे ही, प्रकृति और परमात्मा, स्त्री और पुरुष के चिर सम्बन्ध का सिद्धान्त मौजूद था।

निष्कर्ष यह है कि भारतीय संस्कार आदर्श जीवन के सर्वांगीण सांस्कृतिक विकास एवं परिष्कार के मनोवैज्ञानिक साधन थे। यदि हम उन्हें आधुनिक मनोविज्ञान के प्रकाश में भी देखें, तो इनमें गहरे तत्त्वज्ञान और आधुनिक खोजों का समन्वय मिलता है। इनके द्वारा भारतीय मनीषियों ने मनुष्य के विकास के प्रत्येक अवसर पर सही दिशाओं में सर्वांगीण विकास के साधन उपस्थित किये हैं। यदि हम बचपन से आगे तक के सब संस्कारों का दृढ़ता से पालन करते रहें, तो निश्चय ही प्रत्येक दृष्टि से स्वस्थ और संतुलित व्यक्तित्व का विकास हो सकता है और इन संस्कारों से परिष्कृत व्यक्ति पारिवारिक और सामाजिक जीवन में हर प्रकार सफलता लाभ कर मोक्ष की सहज प्राप्ति कर सकता है। आश्चर्य है मनोविज्ञान की जिन खोजों पर आज पाश्चात्य विद्वान् गर्व कर उन्हें नयी खोजें कहते हैं, वे हमारे मनीषियों को इन संस्कारों के द्वारा बहुत पहले बोधगम्य थीं और वे व्यक्तित्व के विकास के लिए उनका श्रेष्ठतम प्रयोग भी करते थे।

हमारी संस्कृति और सम्यता का आदिकाल वैदिक काल माना जाता है। वैदिक काल में हमारी संस्कृति जिस विचारधारा पर आधारित थी और उसका जो रूप था आज भी वह उसी विचारधारा पर, उसी रूप में आधारित है। श्रीरामधारीसिंह दिनकर अपने ग्रंथ 'संस्कृति के चार अध्याय' में लिखते हैं—"आज से तीन हज़ार वर्ष पूर्व भारतीय संस्कृति का जो रूप था आज भी मूलतः वह वैसा ही है।" मेरा कथन है कि तीन हज़ार वर्ष क्यों, यदि ऋग्वेद पचहत्तर हज़ार वर्ष पुराना है अथवा वेद वाङ्मय के अनुसार वह अनादि है अर्थात् जिस काल की गणना सम्भव नहीं और जैनियों के मतानुसार जैन धर्म भी अनादि है, तो हम दिनकर जी का कथन तो मानते हैं कि भारतीय संस्कृति का वर्तमान रूप आज भी मूलतः वैसा ही है जैसा पहले था, किंतु दिनकर जी ने जो तीन हज़ार वर्ष की अवधि अनुमानित की है उससे मैं सहमत नहीं हूं। मेरा मत है कि उसका मूल रूप न जाने कितने पहले का है।

वेदों में मानव के प्रथम चिंतन का पता लगता है। उसने अपने को देखा, अपने चारों ओर की प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूपों को उसने भिन्न-भिन्न देवता मान उनकी स्तुति की। उसका वह निरीक्षण कितना सुन्दर था। इसका वेदों में उषा आदि के वर्णनों से पता लगता है। वेदों में नासदीय सूक्त के सम्बन्ध में लोकमान्य तिलक ने कहा है कि यह सूक्त मानव का सबसे महान् स्वाधीन चिन्तन है। बाद में उपनिषदों में जो सूक्ष्म तात्विक चिन्तन हुआ है, उसकी जड़ नासदीय सूक्त में थी।

इस चिन्तन के साथ वैदिक काल के मानव ने यज्ञ के अनुष्ठान किये। ये यज्ञ वह इहलोक और परलोक दोनों के कल्याणकारी जीवन के लिए करता था। यज्ञों के इस काल में यज्ञ थे, पूजा नहीं। पूजा कर्म के क्रम अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, ताम्बूल, पूंगीफल आदि सामग्री बाद में आयी। कुछ विद्वान् यह मानते हैं कि आर्यों ने पूजा पद्धति अनार्यों से ली। जो कुछ हो, यज्ञों में पूजा नहीं है। इस काल में भी इस देश में नास्तिक हैं। आज नास्तिक शब्द का अर्थ ईश्वर को न मानने वाला हो गया है, परन्तु उस समय नास्तिक शब्द इस अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता था। नास्तिकों की परिभाषा थी—'नास्तिको वेदनिन्दकः'। चार्वाक् सबसे बड़े आदि नास्तिक थे। आगे चलकर जो भी नास्तिक होते गये, उनका नाम चार्वाक् होता गया।

जैन विद्वान् जैन मत को भी वैदिक मत के सदृश अनादि मानते हैं। महावीर स्वामी तो उनके चौबीसवें तीर्थंकर थे, गौतमबुद्ध के समकालीन। जैन धर्म के पहले तीर्थंकर ऋषभदेव को वैदिक धर्मावलम्बियों ने भी अवतार माना है। जैन धर्म वैदिक धर्म का समकालीन धर्म



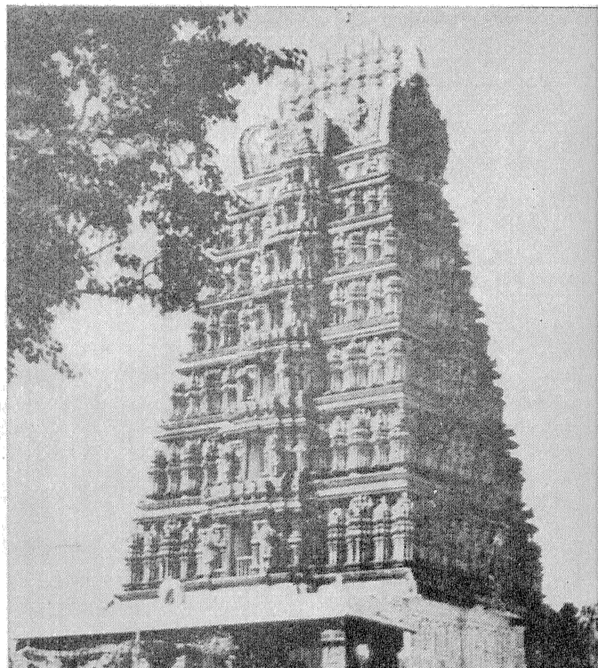
रासलीला की
एक झांकी

कला या जगमग जीवन-ज्योति

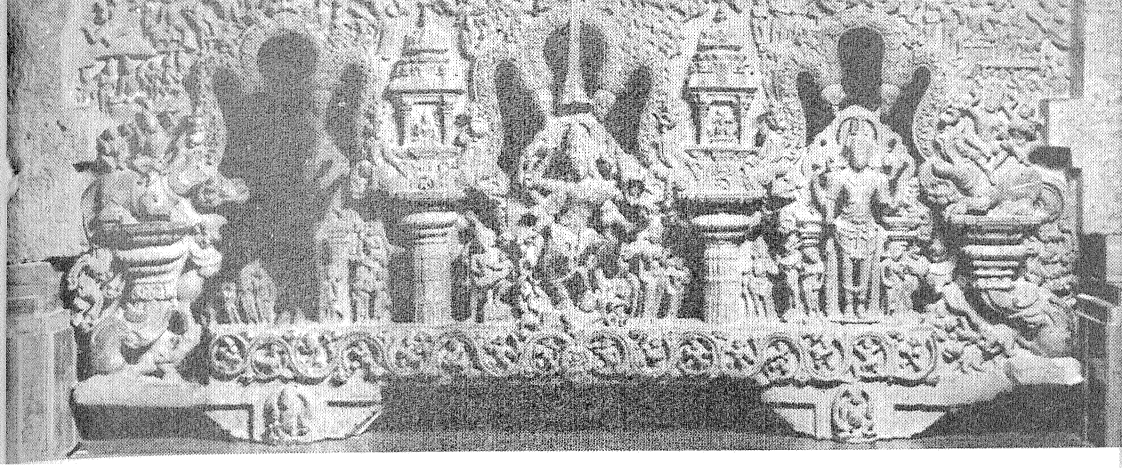


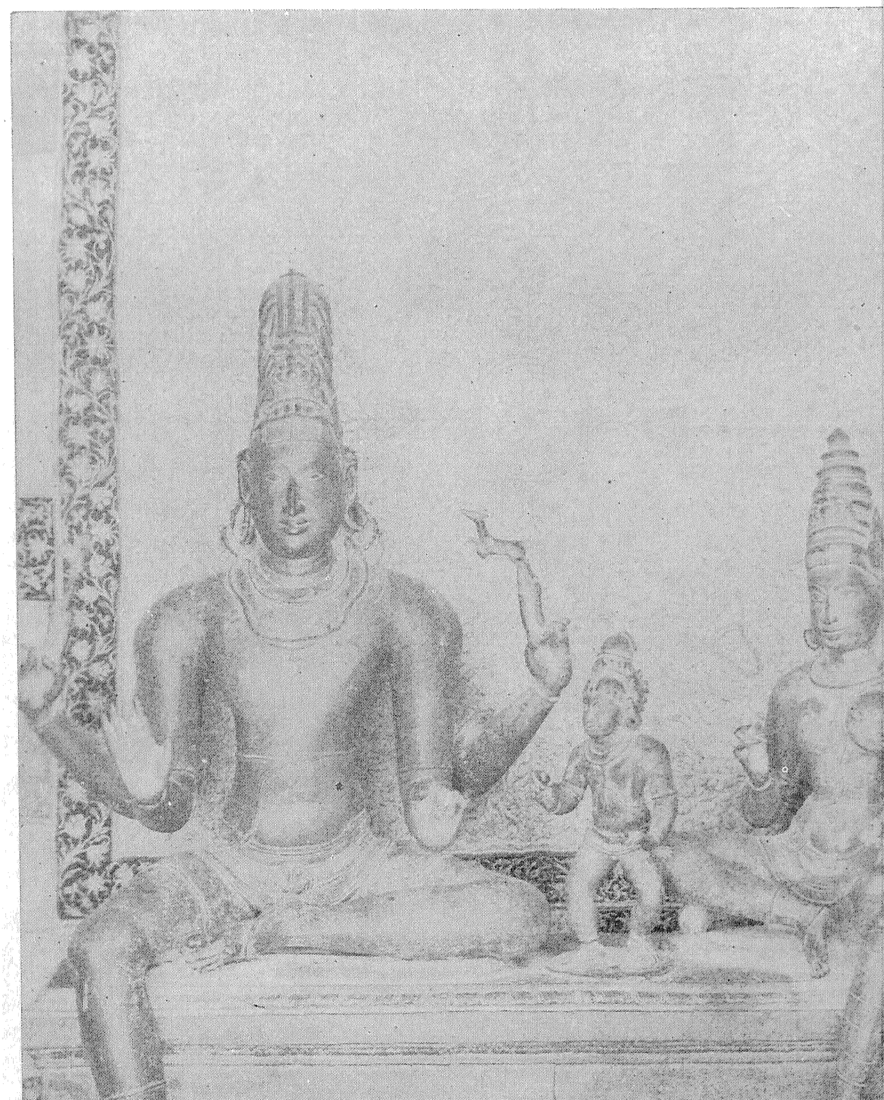


एक : भरहुत का पत्थर का जंगला
दो : हाम्पी का प्रसिद्ध तोरण
तीन : मैसूर राज्य का एक मन्दिर
चार : सोमस्कन्द (दक्षिण कांस्यमूर्ति)



मूर्ति और स्थापत्य कलाएं,
माध्यम बने
कांस्य-पाषाण







अलौकिक नृत्य और संगीत

चित्रकला की गुजराती शैली : एक चित्र

युगल प्रेमी जब मिलते दिव्य



उक्त शैली का दूसरा चित्र (दोनों कल्पसूत्र की जैन पांडुलिपि से)

भी माना जा सकता है। जैन धर्म के कुछ चिह्न सिंधु घाटी के भग्नावशेषों में भी पाये गये हैं। जो लोग जैन धर्म और बौद्ध धर्म का एक ही सांस में उल्लेख कर देते हैं वे गलती करते हैं। जैन धर्म बौद्ध धर्म से बहुत पुराना है। बौद्ध धर्म की विशेषता उसकी प्राचीनता न होकर उसका भारत के बाहर दूर-दूर तक फैल कर भारतीय संस्कृति का संदेश ले जाना है। अब तो इस देश में लगभग पन्द्रह लाख जैन ही रह गये हैं। दक्षिण में भी जैन धर्म फैला, जिससे उत्तर और दक्षिण की एकता को बहुत सहायता पहुंची। भारतीय संस्कृति और सभ्यता में जैन धर्म का भी अत्यन्त उच्च स्थान है।

शनैः-शनैः वैदिक युग के यज्ञों और कर्म-काण्ड में इतना अधिक आडम्बर और हिंसा बढ़ी कि उसका विरोध होना स्वाभाविक हो गया और उपनिषद् काल आया। उपनिषदों की संख्या काफी बड़ी है और वे सब एक ही काल में निर्मित हुए यह भी नहीं है। जिस समय उपनिषदों का चिंतन आरम्भ हुआ वह समय कुछ ऐसा था, जब दुनियां में बड़े-बड़े चिंतक पैदा हुए। चीन के कन्फूशियस् और लाउजी, ईरान के जरथुस्त्र, यूनान के पिथेगोरस, फिलिस्तीन के जिरेमिया और इजकिल इसी काल में हुए। उपनिषदों के चिन्तन में एक ब्रह्म की कल्पना प्रमुख है। परन्तु उपनिषदों का चिन्तन एक ओर यदि संसार के दार्शनिक चिन्तन का सर्वोत्कृष्ट सूक्ष्मतम चिन्तन है तो दूसरी ओर वह इस देश में शनैः-शनैः निष्क्रियता लाया। अतः पहले भगवान् राम ने, बाद में भगवान् कृष्ण ने और तदुपरान्त भगवान् बुद्ध ने पुनः कर्म की महत्ता स्थापित की।

अनेक विद्वानों के मतानुसार मैं भी रामायण और महाभारत का काल कुछ उपनिषदों के बाद का काल मानता हूं। रामायण में कर्मठ जीवन और व्यष्टि एवं समष्टि के कर्त्तव्यों का जैसा निरूपण किया गया है, वैसा हमें संसार के किसी भी साहित्य में नहीं मिलता।

ज्ञान की दृष्टि से महाभारत संसार का सर्वश्रेष्ठ और उच्चतम विश्वकोष माना जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण का भगवद्गीता के रूप में जो उपदेश महाभारत में हुआ है और भगवद्-गीता में जिस प्रकार के तात्विक ज्ञान तथा व्यावहारिक अनासक्ति कर्मयोग का प्रतिपादन हुआ है, वैसा संसार के किसी ग्रंथ में नहीं। भगवान् कृष्ण ने तो अनेक प्रचलित शब्दों का अर्थ ही बदल दिया है; जैसे यज्ञ। वेद-मंत्रों के साथ वेदी में आहुति डालने वाले यज्ञों और भगवान् कृष्ण के यज्ञ में बहुत अन्तर है। भगवान् कृष्ण के द्वारा प्रतिपादित यज्ञ में तो मानव जीवन के समस्त सुपक्षी कर्म आ जाते हैं।

महाभारत के पश्चात् पुराणों के आधुनिक रूपों का समय आया; यद्यपि अधिकांश पुराणों का वर्तमान रूप तो इसके भी कहीं बाद का है; यहां तक कि कुछ विद्वानों के मता-नुसार वे गुप्तकाल में निर्मित हुए।

इसके बाद भगवान बुद्ध का समय आया। रामायण, महाभारत और पौराणिक काल में जो संन्यासधर्म कुछ पिछड़ गया था, उसका पुनः दौर-दौरा हुआ। परन्तु जो लोग यह मानते हैं कि संन्यास मार्ग महावीर स्वामी और गौतम बुद्ध की देन है, वे गलती करते हैं। महावीर स्वामी और गौतम बुद्ध के समय भी यहां संन्यासियों की अनेक संस्थाएं थीं। इनमें से प्रसिद्ध संस्थाओं की संख्या त्रेसठ मानी जाती है। और इन त्रेसठ में छः तो बहुत ही प्रसिद्ध थीं। गौतम बुद्ध का महान् व्यक्तित्व बौद्धमत का सबसे बड़ा आधार था, ऐसा ऊपर कहा गया है। भगवान् बुद्ध ने कर्म की महत्ता पर बल दिया, परन्तु चूंकि वे स्वयं संन्यासी थे

इस लिए भगवान कृष्ण के कर्मयोग और भगवान् बुद्ध की कर्ममहत्ता में एक स्वाभाविक अन्तर अवश्यम्भावी था। फिर भगवान् कृष्ण के समस्त प्रतिपादन में ईश्वरवाद की पुष्टि थी। इसके विपरीत भगवान् बुद्ध ने ईश्वर का कहीं उल्लेख तक नहीं किया, जिसका फल यह निकला कि गौतम बुद्ध के पश्चात् उनका धर्म निरीश्वरवादी हो गया।

भारत की चिन्तन प्रवृत्ति बन्धन से रहित होने पर भी और यहां चार्वाक् के सदृश नास्तिकों के रहते हुए भी, इस देश का प्रचण्ड बहुमत सदा ईश्वरवादी रहा है। गौतम बुद्ध के महान् व्यक्तित्व के कारण बौद्धमत को इस देश में स्थान तो मिला, परन्तु वह बहुत काल तक टिकाऊ न रह सका। फिर भगवान् बुद्ध ने चाहे कर्म की महत्ता स्थापित की हो, परन्तु बुद्ध के स्वयं संन्यासी होने के कारण उनके धर्म में गृहस्थ आश्रम से संन्यास को अधिक प्रश्रय मिला और पुरुषों और महिलाओं को संन्यास का समान अधिकार मिलने के कारण बौद्ध मठों, विहारों और संघारामों में व्यभिचार आरम्भ हुआ। बौद्ध धर्म दो शाखाओं में विभक्त हो गया था। ये शाखाएं थीं हीनयान और महायान। महायान शाखा से आगे चलकर मंत्रयान और वज्रयान शाखाओं की उत्पत्ति हुई और इनमें आगे चलकर इन्हीं में से सहजयान शाखा निकली, परन्तु सहजयान का रूप फिर सुधरा। अनेक सहजयानी सन्तों का प्रादुर्भाव हुआ जैसे कबीर, नानक आदि। सहजयान ने गुह्य समाज, भैरवी-चक्र आदि का परिमार्जन किया।

ऐसे निरीश्वरवादी, जिसमें व्यभिचार भी आ गया था, बौद्धमत का खण्डन आरम्भ हुआ। यह शंकराचार्य के समय पराकाष्ठा को पहुंचा, यद्यपि शंकराचार्य स्वयं भी संन्यासी थे। शंकराचार्य ने गौतम बुद्ध और जैनधर्म के अहिंसा आदि सिद्धान्तों को वैदिक धर्म में ले पुनः ईश्वरवादी वैदिक धर्म की स्थापना की। शंकराचार्य के बाद के आचार्यों ने शनैः-शनैः संन्यास से हट गृहस्थ-आश्रम को प्रधानता दी। संन्यास का जो आरम्भ से ही महत्त्व रहा था, उसके कारण उसका खण्डन तो नहीं हुआ, परन्तु भगवान कृष्ण के सदृश इस प्रकार के विचारों का प्रसार हुआ, जिससे गृहस्थ आश्रम का भी महत्त्व बढ़ा और एक विशिष्ट अवस्था में ही संन्यास आदर्श माना गया। वल्लभाचार्य ने तो विवाह भी किया और यद्यपि स्वयं संन्यास लिया, तथापि अपने अनुयायियों के लिए उसे वर्जित बताया। यज्ञ का भगवान् कृष्ण ने एक नये रूप से प्रतिपादन किया था, जिसके भीतर सारे लौकिक और पारलौकिक कर्म आ जाते थे और ऐसे कर्मों में उन्होंने लोकोपचार के कर्मों को सबसे ऊंचा स्थान दिया था तथा उसी के साथ भक्ति को भी जोड़ा था। बुद्ध ने भी कर्म की महत्ता स्थापित की थी। परन्तु शंकराचार्य के बाद कृष्ण द्वारा प्रतिपादित भक्ति को सर्वोच्च स्थान मिल गया। वैदिक धर्म के इस नये रूप में यज्ञों के हवन-तो रहे, परन्तु पूजा हवन से अधिक व्यापक हो गयी। भक्ति ने इस पूजा को मंदिरों और मूर्तियों की प्रतिष्ठा कर और अधिक प्रश्रय दे दिया।

मैंने ऊपर लिखा है कि भारतीय संस्कृति धर्म प्रधान संस्कृति है। धर्म शब्द को हमारे यहां बड़े व्यापक अर्थ में लिया गया है। परन्तु इस व्यापक अर्थ में भी नींव अध्यात्म की ही रही है। यहां के लोगों के कर्म इसी धर्म की विचारधारा से प्रेरित रहे हैं और यह है धर्म प्रधान भारतीय संस्कृति की ऐतिहासिक आरम्भ से अब तक की विचारधारा। इस विचार-धारा के मूल तत्त्वों में कभी बहुत बड़ा परिवर्तन नहीं हुआ। इसीलिए जैसा पहले कहा गया है, भारतीय सामाजिक जीवन में इसकी पुरानी परम्परा आज भी मौजूद है। यह परम्परा कितनी पुरानी है, इस सम्बन्ध में मतभेद हो सकते हैं। कोई इसे तीन, चार, पांच, छः हज़ार

वर्ष ही पुरानी मान सकते हैं, कोई दसों-बीसों हज़ार वर्ष पुरानी और कोई लाखों वर्ष पुरानी अथवा अनादि याने जिसकी गणना नहीं की जा सकती ।

भारतीय संस्कृति और भारतीय इतिहास का सम्बन्ध

जैसा ऊपर कहा गया है कि संस्कृति का विकास शनैः-शनैः होता है, अतः मानव की समस्त संस्कृतियों का विकास भी शनैः-शनैः हुआ है और इतिहास से उसका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। भारतीय संस्कृति की भी वही स्थिति है। कुछ विद्वानों के मतों के आधार पर मैंने यह माना है कि मानव का जन्म पहले पहल भारत में ही हुआ। कब हुआ इस सम्बन्ध में शायद आज तो बड़े से बड़ा विद्वान् भी निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कह सकता। यहां रहने वाली भिन्न-भिन्न जातियों में यहां के आदिवासी, द्रविड़ और आर्यों को भी कुछ विद्वानों के मतानुसार मैंने यहां बाहर से आया न मानकर यहीं का माना है। संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद है और यह यहीं लिखी गयी थी, इसमें तो किसी का मतभेद है ही नहीं। हां, कब लिखी गयी थी इसमें मतभेद है, इस सम्बन्ध में भी मैंने ऊपर अनेक विद्वानों के मतों को उद्धृत किया है। सिंधु घाटी की सभ्यता को मैं इस देश की सबसे प्राचीन सभ्यता नहीं मानता। इसके हज़ारों वर्ष पहले यह देश सुसंस्कृत और सभ्य हो गया था। अतः इस देश की संस्कृति और इस देश का इतिहास बहुत पुराना है। कितना पुराना है, यह भी आज कोई नहीं कह सकता, शायद लाखों वर्ष पुराना हो। परन्तु आधुनिक विद्वान् इतिहास को जिस दृष्टि से देखते और उसका विभाजन करते हैं, उसी दृष्टि से मैं यहां इतिहास का निरूपण कर उसके साथ संस्कृति और सभ्यता का समन्वय करने का प्रयत्न करूंगा।

मानव सामाजिक प्राणी है, सिंह, व्याघ्र आदि के सदृश अकेला या अपने ही कुटुम्ब में रहनेवाला नहीं। कुछ विद्वान् कहते हैं पहले मनुष्य भी इन अकेले रहने वाले प्राणियों के सदृश ही वनों में रहता था। जो कुछ हो, परन्तु इस प्रागैतिहासिक काल के भारतीय मानव के सम्बन्ध में मुझे यहां कुछ नहीं कहना है। मुझे यहां उस भारतीय मानव के सम्बन्ध में कहना है जो सामाजिक प्राणी था, क्योंकि संस्कृति और सभ्यता का विकास इस मनुष्य ने किया, उसने नहीं, जो अकेला वनों में निवास करता था। इस सामाजिक मनुष्य या मनुष्य-समूह अथवा समाज का इतिहास बहुत पुराना है, जैसा ऊपर उल्लेख किया गया है।

हमें ऐसे भारतीय मानव का इतिहास ऋग्वेद से मिलता है, वहां से भारतीय संस्कृति और सभ्यता का भी।

व्यक्ति काल को बनाता है अथवा काल व्यक्ति को, इस सम्बन्ध में विद्वानों में अलग-अलग मत हैं, परन्तु मेरे मतानुसार यह विवाद बहुत दूर तक निरर्थक है। दोनों का अन्योन्य सम्बन्ध है। संसार के इतिहास में विशिष्ट कालों में विशिष्ट व्यक्ति जन्मे और विशिष्ट व्यक्तियों ने विशिष्ट कालों का निर्माण किया। भारतीय इतिहास में भी हमें यही बात मिलती है।

इस सामाजिक प्राणी मानव के समाज का संगठन निम्न बातों पर निर्भर है :—

(1) भिन्न-भिन्न कालों में भिन्न-भिन्न महान् जनों ने जन्म लिया और उन्होंने अपने काल को एक विशिष्ट दिशा में प्रेरित किया। यह प्रेरणा उन्होंने अपनी कृतियों और कथनों से दी। करनी और कथनी दोनों का सम्बन्ध रहा। (2) व्यष्टि और समष्टि दोनों के जीवन के मार्ग निर्धारित हुए। इन मार्गों के निर्धारण में इन महान् जनों की कृति और कथन का

अनुसरण हुआ, इसीलिए एक सूक्त ही बन गया : "महाजनो येन गतः स पन्थाः"; (3) व्यष्टि और समष्टि को इस पथ पर चलाने के लिए समय-समय पर नियम बनाये गये, जिन्होंने विधि (कानून) का रूप लिया। (4) वे नियम न तोड़े जा सकें, इसके लिए राजसत्ता की स्थापना हुई।

ध्यान रहे, संसार में महान् जन वे ही माने गये हैं, जिनकी कृतियां, व्यष्टि और समष्टि के कल्याण के लिए हुई हैं और जिन कृतियों अथवा कथनों से इस कल्याण को प्रेरणा मिली। इस आधार पर जो नियम बने हैं, वे भी व्यष्टि और समष्टि के कल्याण को ही ध्यान में रखकर बनाये गये हैं और इन नियमों के संचालन के लिए जो शासन व्यवस्था हुई है, उसका उद्देश्य भी व्यष्टि और समष्टि का कल्याण ही रहा है। परन्तु सदा से ही मानव समाज में ऐसे व्यक्ति भी जन्म लेते रहे हैं, जिन्होंने अपने स्वार्थ के लिए अन्य व्यक्तियों अथवा समाज की कोई चिन्ता नहीं की; न जाने कितने व्यक्तियों को पीड़ाएं पहुंचायीं और उन नियमों को तोड़ने का प्रयत्न किया, जो व्यष्टि और समष्टि के कल्याण के लिए बने हैं। ऐसे व्यक्ति काफी पराक्रमी भी रहे हैं और या तो ऐसे कुकर्मी व्यक्तियों का मुकाबला सुकर्मी व्यक्तियों ने किया है या संगठित समाज ने। इसीलिए मानव समाज में सदा राजसत्ता का सर्वोपरि महत्त्व रहा है, आज भी है और आज यह कहना कठिन है कि कार्ल मार्क्स के कथनानुसार कभी वैसा समय आता है या नहीं, जब समाज के पूर्ण विकसित रूप में राजसत्ता विलीन हो जायेगी (State will wither away)। आज तक के इतिहास में तो सामाजिक संगठन में राजसत्ता सब से प्रधान रही है और इतिहास का विभाजन तथा निरूपण दोनों ही समय-समय पर संस्थापित राजसत्ता के आधार पर ही हुआ है।

भारतीय मतानुसार भिन्न-भिन्न कालों में ऐसे समाज विरोधी कुकर्मियों का नाश करने भगवान् स्वयं अवतार धारण करते हैं।

भगवद्गीता में कहा ही है:—

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

* * *

परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥"

ऋग्वेद में ब्रह्म की वन्दना और कुछ प्राकृतिक वर्णनों के सिवा यत्र-तत्र कुछ ऐतिहासिक वर्णन भी आये हैं। राजा सुदास शायद पहला मानव नरपति था, जिसका वेदों में काफी वर्णन है।

यथार्थ में प्राचीन भारत का ऐतिहासिक विवरण रामायण, महाभारत और पुराणों में मिलता है।

एक बात ध्यान रखने योग्य है कि व्यष्टि और समष्टि को ठीक पथ पर चलाने के लिए भारत में जो नियम निर्धारित किये गये, और जिन्हें आगे चलकर विधि का रूप मिला, उन नियमों का निर्धारण राजसत्ता द्वारा नहीं हुआ। राजसत्ता थी इन विधियों की और इन विधियों के अनुसार सामाजिक संगठन की रक्षा के लिए। इन नियमों और विधियों का निर्माण उन ऋषि-महर्षियों द्वारा होता था, जिनका राजसत्ता में कोई प्रत्यक्ष हाथ नहीं रहता था। इन



मार पर विजय

और मार की हुई ,पराजय विजयी हुआ विराग



अवलोकितश्वर पद्मपाणि

नियमों और विधियों से सम्बन्ध रखने वाली सभी रचना शास्त्रों और स्मृतियों के रूप में हुई हैं, जिनके रचयिता सांसारिक झंझटों से विलग, स्वार्थों से रहित तपोवनों में निवास करते थे और जिनका सामाजिक स्थान राजाओं से भी ऊंचा माना जाता था। हमारी संस्कृति की यह एक विशेषता रही है।

रामायण, महाभारत और पुराणों में हमारे उस काल का इतिहास भरा पड़ा है, जिसे आजकल के विद्वान् प्रागैतिहासिक काल मानते हैं, क्योंकि आधुनिक विद्वानों के मतानुसार तो भारत का यथार्थ इतिहास गौतम बुद्ध के समय से ही शुरू होता है।

रामायण, महाभारत और पुराणों में इस प्रागैतिहासिक काल के जिन दो प्रधान राजवंशों का इतिहास आया है उनके नाम हैं—सूर्यवंश और चंद्रवंश। इन दो वंशों में ही भगवान् के भी प्रधान-प्रधान अवतार हुए और इन्हीं दो वंशों के राजकाल में भारतीय संस्कृति और सभ्यता का विकास हुआ।

इस दीर्घकाल में इन वंशों ने कितने राजा महाराजाओं को जन्म दिया और उन्होंने अपने काल को अपनी करनी और कथनी दोनों से कितनी प्रेरणा दी। हमारे रामायण, महाभारत और पुराण ऐसे जनों की यथार्थ में जीवनियां हैं और इन्हीं जीवनियों से प्रेरणा प्राप्त किया हुआ हमारा समाज है और उसकी संस्कृति तथा सभ्यता है।

सूर्यवंश में दिलीप, रघु, राम, भरत आदि और चंद्रवंश में युधिष्ठिर, अर्जुन, कृष्ण आदि जैसे पुरुष चरित्र एवं सूर्यवंश में सावित्री, सीता आदि एवं चन्द्रवंश में रुक्मिणी, द्रौपदी आदि स्त्री चरित्रों का जैसा वर्णन मिलता है तथा इन चरित्रों से जैसी प्रेरणा प्राप्त होती है, वैसे चरित्र संसार के किसी इतिहास में नहीं हैं।

रामायण आदर्श चरित्रों की खान है और महाभारत चरित्रों का सागर। कहा जाता है कि आज भी ऐसा कोई चरित्र नहीं, जिसकी कल्पना व्यासजी ने महाभारत की रचना के समय न कर ली हो और वह चरित्र महाभारत में किसी न किसी स्थल पर किसी न किसी रूप में न आ गया हो।

आधुनिक विद्वान् प्रायः यूनान के महाकवि होमर के महाकाव्य 'इलियड' और 'ओडेसी' के चरित्रों से रामायण और महाभारत के चरित्रों की तुलना किया करते हैं, जो सर्वथा हास्यास्पद है।

भारत में राजतन्त्र और गणतन्त्र दोनों ही शासन-पद्धतियों का स्थान रहा है, परन्तु रामायण, महाभारत और पौराणिक काल अधिकतर राजतन्त्र शासन-पद्धति का काल था। हां, इस पद्धति का संचालक यदि कोई अनुपयुक्त व्यक्ति होता था, तो वह हटा दिया जाता था। राजा वेणु के वध तक का वर्णन आया है, परन्तु राजशासन पद्धति के होते हुए भी अत्यन्त प्राचीन काल से यहां ग्राम पंचायतें रही हैं।

हमारी संस्कृति और सभ्यता का यथार्थ में इस प्रागैतिहासिक काल में निर्माण हो गया। इसी बीच जैन धर्म के भी चौबीस तीर्थंकरों में से अधिकांश तीर्थंकर हुए, जिन्होंने अपनी करनी और कथनी से हमारी संस्कृति पर महान् प्रभाव डाला।

भारतीय संस्कृति और सभ्यता की जानकारी हमें भारतीय वाङमय द्वारा ही होती है, जिसमें वेद-वेदांग, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण और स्मृतियां प्रमुख ग्रन्थ हैं।

इसके बाद सिन्धु घाटी की सभ्यता का समय आता है, जिसके भग्नावशेष मिले हैं। अब तक भारत में जो भग्नावशेष मिले हैं, उनमें सिन्धु घाटी के भग्नावशेष ही सबसे पुराने हैं। इन भग्नावशेषों में कुछ लिखित सामग्री भी प्राप्त हुई है, परन्तु इसकी लिपि अब तक पढ़ी नहीं जा सकी है। अतः हमारी सांस्कृतिक विचारधारा जो सिन्धु घाटी की सभ्यता तक चली आ रही थी, उसमें उस समय कोई परिवर्तन हुआ था या वह वैसी ही थी, यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता। परन्तु चूंकि हमारी सांस्कृतिक विचारधारा के मूलतत्त्वों में अब तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, अतः यह मानकर ही चलना चाहिए कि सिन्धु घाटी सभ्यता के समय में भी मूल विचारधारा में ऐतिहासिक दृष्टि से कोई परिवर्तन नहीं हुआ होगा। सिन्धु घाटी की खुदाई में जो कुछ मिला है, उससे अधिकतर उस काल के भौतिक जीवन का ही पता लगता है और यह भौतिक जीवन प्रायः उसी प्रकार का था जैसा इस सभ्यता के पूर्व के वाङ्मय में वर्णित है।

इसके बाद जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी और भगवान बुद्ध का समय आता है, जहां से आधुनिक विद्वान् भारत के ऐतिहासिक काल का यथार्थ आरम्भ मानते हैं।

महावीर स्वामी तो जैनियों के चौबीस तीर्थंकरों की परम्परा के अन्तिम तीर्थंकर हुए, जिन्होंने जैन धर्म के मूल सिद्धान्त अहिंसा की पुनः दृढ़ संस्थापना की और त्याग एवं तप के मार्ग को सबसे प्रशस्त पथ निरूपित किया।

गौतम बुद्ध का संसार के महान् व्यक्तियों में एक व्यक्तित्व था। परन्तु जहां तक उनके धर्म का सम्बन्ध है, यथार्थ में देखा जाय तो बौद्ध धर्म कोई सर्वथा नवीन धर्म नहीं है। वैदिक धर्म में यज्ञों के बाहुल्य से जो हिंसा आ गयी थी, बौद्ध धर्म ने उसी का संशोधन किया और फिर समाज में धीरे-धीरे जो वर्ण-व्यवस्था कर्म के अनुसार न रहकर जन्म के अनुसार हो गयी थी और शनैः शनैः चार वर्ण ही न रहकर एक-एक वर्ण में न जाने कितनी जातियों और उपजातियों का निर्माण हो गया था, बौद्ध धर्म ने इस वर्ण-व्यवस्था पर आघात किया। बौद्ध धर्म के प्रचार तक भारतीय समाज में ब्राह्मणों का सर्वश्रेष्ठ स्थान था। जब बौद्ध धर्म ने सारी वर्ण-व्यवस्था पर आघात किया, तब जो जातियां ब्राह्मणों से जितनी दूर थीं, वे बौद्ध धर्म के उतने ही निकट आ गयीं। भगवान बुद्ध ने यद्यपि संन्यास को ही प्रधान रखा, तथापि ज्ञान के स्थान पर कर्म को अधिक महत्त्व दिया, परन्तु वेद के कर्मकाण्ड को नहीं। फिर संसार के परे काल्पनिक विचारों का बौद्ध धर्म में उन्होंने कोई स्थान नहीं रखा। ईश्वर तक के लिए गौतम ने अपने अनन्त उपदेशों में एक शब्द भी नहीं कहा है।

उस समय के समाज पर महावीर स्वामी और गौतम बुद्ध दोनों महापुरुषों का अत्यधिक प्रभाव पड़ा था और पुराना जैन धर्म एक नवीन जोश के साथ आगे आया था। बौद्ध धर्म तो गौतम बुद्ध द्वारा ही स्थापित हुआ था, अतः उसमें नवीनता का उत्साह स्वाभाविक था।

इस काल में भारत में राजतंत्र के साथ-साथ अनेक गणतंत्र भी स्थापित हो गये थे। इन गणतंत्रों का जिस प्रकार के विकसित रूप का विवरण मिलता है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि महावीर स्वामी और गौतम बुद्ध के बहुत पहले से ये गणतंत्र चले आते थे।

भारत में आरम्भ से ही शिक्षा पर बहुत ध्यान दिया गया था। तपोवन में ऋषि-मुनियों का कदाचित् ही कोई आश्रम हो, जहां कुछ विद्यार्थी ब्रह्मचर्य आश्रम में विद्या अध्ययन न करते हों, परन्तु इस काल में तक्षशिला और नालन्दा के दो विशाल विश्वविद्यालय भी मिलते हैं।

गौतम बुद्ध के बाद ईस्वी सन् के 585 वर्ष पूर्व भारत पर पहला वैदेशिक हमला ईरान के काइरस का हुआ। काइरस को संस्कृत साहित्य में कुरु नाम दिया गया है, परन्तु काइरस भारतीय सीमा में अधिक बढ़ नहीं सका। ईरान और भारतीय सीमा पर ही उस क्षेत्र की एक जंगली जाति मस्गेड द्वारा काइरस मारा गया।

इसके बाद भारत पर ईस्वी सन् के 326 वर्ष पूर्व यूनान के सिकन्दर का हमला हुआ, परन्तु सिकन्दर की सेना के आगे बढ़ने से इन्कार करने पर सिकन्दर को लौट जाना पड़ा। आधुनिक खोजों के आधार पर यह भी सिद्ध हुआ है कि सिकन्दर भारत से हारकर गया था।

सिकन्दर के लौटने के बाद आधुनिक इतिहासवेत्ताओं के मतानुसार भारत सर्वप्रथम एक राज्यतंत्र के अन्तर्गत आया। यह राज्यतंत्र मौर्यवंश का था, परन्तु मौर्यों के इस राज्य को मैं पहला भारतीय चक्रवर्ती राज्य मानने के लिए तैयार नहीं हूं। इसके पहले भी सूर्यवंश और चन्द्रवंश में अनेक चक्रवर्ती सम्राट् हो गये थे, जिन्होंने सम्पूर्ण भारत पर अपना राज्य स्थापित कर भारतीय संस्कृति को अखंडित रखने का प्रयत्न किया था और अश्वमेघ तथा राजसूय यज्ञ किये थे। मौर्य साम्राज्य की स्थापना चाणक्य और चन्द्रगुप्त के प्रयत्न से हुई। इसी वंश में वह अशोक सम्राट् हुआ, जिसके सम्बन्ध में पश्चिम के एक प्रसिद्ध इतिहासकार श्री- एच० जी० वेल्स ने लिखा है कि वैसा सम्राट् मानव इतिहास में कभी नहीं हुआ।

सिकन्दर के आक्रमण के समय यहां के अनेक गणतन्त्र देश हित के विरुद्ध साजिश करने वाले पाये गये थे। फिर शक्ति की दृष्टि से भारत का एक साम्राज्य आवश्यक था, अतः चाणक्य ने इन गणतंत्रों को समाप्त करने की ठानी। इसके बाद हमारे देश के इतिहास में गणतंत्र स्थापित न हो सके और सन् 1950 ईस्वी में सम्पूर्ण देश में प्रजातंत्र की स्थापना तक इस देश में भारतीय और विदेशी दोनों राजतंत्र ही चलते रहे।

मौर्यवंश के पतन के बाद इस देश में उतना बड़ा कोई भारतीय साम्राज्य स्थापित न हो सका, परन्तु फिर भी समय-समय पर अनेक साम्राज्य स्थापित हुए, जिनमें कनिष्क का, गुप्तवंश का और हर्षवर्धन का साम्राज्य प्रमुख था। यों छोटे-छोटे राज्य तो यहां अनेक रहे। इस बीच विदेशियों के भी भारत पर हमले हुए। कनिष्क स्वयं एक शक था, जो विदेश से आया था। गुप्तवंश के राज्य के समय हूणों के कई आक्रमण हुए, परन्तु ये शक और हूण आदि अपनी कोई संस्कृति इस देश में स्थापित न कर सके। भारतीय संस्कृति इतनी उन्नत और विशाल थी कि ये आक्रमणकारी भी भारतीय संस्कृति में रंग कर भारतीय हो गये।

उत्तर भारत से दक्षिण भारत का इतिहास कुछ पृथक् रहा है, परन्तु उत्तर भारत और दक्षिण भारत की संस्कृति में कभी कोई अन्तर नहीं रहा।

ऋग्वेद के काल से लेकर मुसलमानों के आक्रमण तक भारतीयों की संस्कृति प्रायः एक ही रूप की रही है। जैसा पहले कहा गया है, आज की भारतीय संस्कृति में भी मूलभूत बातें तो वही हैं, जो ऋग्वेद काल की संस्कृति में थीं, तथापि मुसलमानों के आक्रमण के बाद उस पर एक बाह्य संस्कृति का प्रभाव अवश्य पड़ा है, जिससे इन्कार नहीं किया जा सकता।

मुहम्मद साहब का जन्म सन् 570 ईस्वी में और मृत्यु 632 ईस्वी में हुई । सन् 622 ईस्वी में उन्होंने मक्का छोड़ मदीने की हिजरत की। यही वर्ष इस्लाम का आरम्भिक वर्ष माना जाता है। परन्तु इस्लाम इस तूफान से आगे बढ़ा कि 700 ईस्वी का आरम्भ होते-होते ही इस्लाम इराक, ईरान एवं मध्य एशिया के प्रायः समस्त भाग में फैल गया। भारत का सिंध क्षेत्र सन् 712 ईसवी में मुसलमानों के हाथ में आया और उसी वर्ष स्पेन पर भी मुसलमानों का अधिकार हो गया। यहां से भारतीय संस्कृति पर इस्लाम का असर पड़ा । परन्तु जिस देश में इस्लाम जन्मा था, वहां के लोग सभ्य और सुसंस्कृत न थे, अतः ईरान और भारत में इस्लाम धर्मावलम्बियों पर ईरानी और भारतीय संस्कृति का असर पड़ा । फारसी भाषा ईरान की भाषा है, जो मुसलमानों की प्रधान भाषा हुई और सूफ़ी मत, जिसका भारत में काफी दौर-दौरा रहा, यथार्थ में वेदान्त से पूर्णतया प्रभावित है ।

यद्यपि सिंधु पर सन् 712 में मुहम्मद बिन कासिम ने अधिकार कर लिया था, तथापि मुहम्मद गज़नवी की चढ़ाइयों तक भारतीयों और मुसलमानों के सम्बन्धों में वैसी कटुता नहीं आयी थी, जैसी मुहम्मद गज़नवी के आक्रमणों के बाद आयी।

इस्लाम अरबी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है शांति में प्रवेश करना। कुरान का अर्थ है उच्चारण करने वाली अथवा पढ़नेवाली वस्तु। पैगम्बर कहते हैं पैगाम या संदेश ले जाने वाले को । हज़रत मुहम्मद साहब को जब धर्म का इलहाम हुआ तब से वे पैगम्बर, नबी और रसूल कहलाने लगे। पैगम्बर माने संदेश लाने वाले, नबी माने किसी महान ज्ञान की घोषणा करने वाले, रसूल याने दूत। अर्थ यह हुआ कि मुहम्मद साहब खुदा का संदेश (पैग़ाम) पृथ्वी पर लाने वाले हैं, वे महान् ज्ञान की घोषणा करने वाले हैं और खुदा के दूत हैं। इस्लाम का मूल मंत्र है —"ला इलाह इल इल्लाह मुहम्मदरसूलिल्लाह" अर्थात् अल्लाह के अतिरिक्त और कोई पूजने योग्य नहीं तथा मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं। इस्लाम के अनुयायी होने के लिए अल्लाह को मानने के साथ अल्लाह के पैगम्बर नबी और रसूल मुहम्मद को भी मानना जरूरी है । कुरान में हर मुसलमान के लिए पांच महज़बी काम लाज़िमी हैं— (1) कलमा पढ़ना, (2) नमाज़ पढ़ना, (3) रमजान के महीने में एक महीना रोजा रखना, (4) अपनी आमदनी का चालीसवां भाग जकात में याने दान में देना, (5) हज करना। आगे चलकर मुसलमानों में सुन्नी और शिया दो फिरके हुए।

सूफी मत का आरम्भ कहां से हुआ, इसमें मतभेद है । डा० ताराचन्द ने सूफी मत के पांच उद्गम माने हैं, (1) कुरान, (2) मुहम्मद का जीवन, (3) ईसाई मत और अभिनव अफलातूनी मत, (4) हिन्दुत्व और बौद्ध, तथा (5) ईरान में प्रचलित जरथुस्त्र धर्म । सूफीधर्म रहस्यवादी है, जिसे इस्लाम में "तसब्वुफ" कहते हैं । इसके सिद्धान्तों का निचोड़ है—सौन्दर्य से प्रेम और प्रेम से मोक्ष। डाक्टर ताराचन्द की राय के अनुसार चाहे सूफी मत के पांच उद्गम हों, परन्तु उस पर सबसे अधिक प्रभाव भारत का ही है। यह यूनान के द्वारा और भारत से जाने वाले वैदिक धर्मावलंबी तथा बौद्ध मतावलंबी संतों के द्वारा पड़ा । राबिलसन ने लिखा है कि जब सिकन्दरिया व्यापार का एक प्रमुख नगर था तब वहां भारतीय और यूरोपीय व्यापारी मिलते थे। यहीं अभिनव अफलातूनी मत वाले यूनानी और भारतीय बौद्ध विचार करते थे। हज़रत मुहम्मद से बहुत पहले अरब, बगदाद और बलख से भारत का सम्बन्ध था, इसलिए भारतीय विचारधारा का

अरब में मुहम्मद साहब के बहुत पहले प्रवेश हो चुका था। अतः डा० ताराचन्द के मतानुसार अभिनव अफलातूनी मत और भारतीय मत दो मार्गों द्वारा सूफी मत पर प्रभाव पड़ा। अतः सूफीमत प्रधानतया भारतीय विचारधारा से ही उत्पन्न हुआ।

मुहम्मद गज़नवी के आक्रमणों के बाद इस देश की प्राचीन संस्कृति का पतन आरम्भ हुआ। मुगलों के शासनकाल में अकबर, जहांगीर और शाहजहां के वक्त पुनः भारतीय संस्कृति जगी। अकबर का दीने-इलाही भारतीय सहिष्णुता का एक नमूना है। उन्हीं के समय अल्लोपनिषद् लिखा गया तथा रामायण, महाभारत, योगवाशिष्ठ और कुछ वेदान्त के ग्रंथों का फैज़ी द्वारा फारसी में अनुवाद किया गया। इसी काल में गुरु नानक हुए और तुलसीदास, सूरदास, रहीम आदि महान्तम संत तथा साहित्यकार हुए। उर्दू भाषा का जन्म इसी काल में हुआ। उर्दू की उत्पत्ति दक्षिण में हुई। खुसरो हिन्दी खड़ीबोली और उर्दू दोनों के जनक माने गये हैं। यथार्थ में अवधी और ब्रजभाषा की काव्य रचना के पहले कविता खड़ीबोली में लिखी गयी। अमीर खुसरो का काव्यकाल तेरहवीं सदी में माना जाता है। कुछ लोग उर्दू का पहला शायर बली को मानते हैं। परन्तु बली के पहले दक्षिण के कुछ शासक इब्राहीम आदिल शाह, मुहम्मद कुली कुतुबशाह, सुलतान मुहम्मद कुतुबशाह, सुलतान अब्दुल कुतुबशाह, जो सोलहवीं शताब्दी के अन्त से सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक दक्षिण में हुए, उर्दू की कविता करते थे। बली का समय है 1668 से 1744 तक। ये भी औरंगाबाद के थे। अतः चाहे अमीर खुसरो उत्तर भारत के हों, परन्तु उर्दू का सच्चा आरम्भ दक्षिण से हुआ। फिरोजशाह बहमनी ने दो हिन्दू स्त्रियों से विवाह किया था, जिनमें एक विजयनगर के नरेश देवराय की पुत्री थी। बीजापुर के ईसुफ आदिलशाह ने मराठा सरदार मुकुन्दराय की बहन से शादी की थी। इनकी कन्याएं दक्षिण के अनेक शासकों के कुलों में ब्याही गयी थीं। एक की उत्तराधिकारिणी चांदबीबी हुई। बीजापुर के इब्राहीम आदिलशाह का तो हिन्दुओं के प्रति इतना अच्छा व्यवहार था कि उसकी प्रजा उसे जगत् गुरु कहती थी। विजयनगर के नरेश देवराय की फौज में मुसलमानों की यथेष्ट संख्या थी। दक्षिण में उर्दू का जन्म इसी वायुमण्डल में हुआ। अतः वहां की उर्दू में हमें उतने अधिक फारसी और अरबी शब्द नहीं मिलते। उत्तर भारत के उर्दू कवियों में फायज़ सब से पहले कवि माने जाते हैं। इनका और दक्षिण के बली का एक ही काल था।

मुस्लिम आक्रमणों के काल में उत्तर भारत में भाषा दो रूपों में चल रही थी। एक रूप के कवि थे चन्द्र, विद्यापति आदि और दूसरे के खुसरो। यद्यपि खुसरो ने खड़ी बोली में लिखा था, तथापि कविता पनपी ब्रज और अवधी में। अकबर ने जिस भारतीय संस्कृति को अपनाया और बढ़ाया, उसमें ईरानी से भारतीय अंश कहीं अधिक था। अकबर हिन्दू-मुस्लिम एकता की इस संस्कृति को चिरस्थायी करना चाहता था। उस समय के अनेक मुसलमान कवियों ने ब्रज और अवधी भाषाओं को अपनाया। रहीम, रसखान आदि की कविताएं प्रसिद्ध हैं। जहांगीर और शाहजहां ने अकबर की नीति का ही अनुसरण किया, परन्तु औरंगज़ेब ने इस नीति को पुनः पलट कर अकबर के मनसूबों पर पानी फेर दिया। फिर भी अकबर द्वारा प्रचारित भारत की हिन्दू-मुस्लिम मिश्रित संस्कृति का विनाश नहीं हो पाया, इसका प्रमाण दोनों की वेश-भूषा, रीति-रिवाज़ आदि हैं।

धार्मिक क्षेत्र में भी मूर्ति ध्वंसक मुसलमान ताजियों के जलूस निकलते हैं और मजारों की पूजा करते हैं। यह मूर्ति पूजा नहीं तो क्या है। सौभाग्य की रक्षा के लिए मुस्लिम महिलाएं मांग में सिंदूर भरती हैं, हाथ में मेंहदी रचाती हैं और पांव में महावर लगाती हैं, नाक में नथ पहनती हैं और हाथों में लाख और कांच की चूड़ियां।

भारत का यूरोप से यों तो बहुत प्राचीन सम्बन्ध था; इसी प्रकार ईसाई धर्म से। श्री सेंट थामस के सम्बन्ध में कथन है कि वे अन्त समय में भारत आकर रहे और उनकी मृत्यु मैलापुर (मद्रास) में हुई। सेंट थामस जब मलाबार में उतरे, तो उन्हें वहां की भूमि ने अत्यधिक आकृष्ट किया, जिससे वे वहीं बस गये। इस प्रकार भारत में ईसाई धर्म का प्रचार ईसा की पहली शताब्दी से ही आरम्भ हो गया था। दूसरी शताब्दी में तो भारतीयों ने केरल में ईसाई धर्म भी ग्रहण कर लिया था, परन्तु अंग्रेज़ों के प्रभुओं के रूप में आने के पहले भारतीय संस्कृति और ईसाई धर्म का सम्बन्ध सांस्कृतिक सम्बन्ध था। अंग्रेज़ों के समय जब यूरोप वाले भारत पर शासक के रूप से आये, तब पश्चिम की संस्कृति का भारतीय संस्कृति पर एक-दूसरे प्रकार का प्रभाव पड़ा, जिसके फलस्वरूप गांधी युग के पूर्व भारतीय अपनी संस्कृति को अत्यधिक हेय और पश्चिमी संस्कृति को अत्यधिक उच्च दृष्टि से देखने लगे थे।

संसार पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव

भारत का न जाने कितने प्राचीनकाल से संसार के अनेक देशों से सम्बन्ध रहा है। यह सम्बन्ध सैनिक सम्बन्ध कभी भी नहीं रहा। भारत ने अपनी अखण्डता का तो सदा प्रयत्न किया, परन्तु किसी भी देश को जीतकर अपने देश का राज्य उस देश पर जमाने का कभी भी यत्न नहीं किया। भारत का जिन देशों से भी सम्बन्ध रहा, वह प्रधानतया सांस्कृतिक सम्बन्ध रहा और भारतीय संस्कृति का देश देशान्तरों में जो इतना प्रचार हुआ उसके दो ज़रिए थे:—(1) व्यापार और (2) धर्म प्रचार।

ऋग्वेद में "नावः समुद्रगाः" अर्थात् समुद्र में चलने वाली नावों का वर्णन आया है, जिससे जान पड़ता है कि प्राचीन काल में हमारे देशवासी समुद्र-यात्राएं करते थे। ये यात्राएं व्यापार और सांस्कृतिक प्रचार के लिए होती थीं। इसके कई प्रमाण मिलते हैं।

भारत के बाहर भारत का ईरान से सबसे प्राचीन सम्बन्ध था। संस्कृत और ईरान की प्राचीन भाषा फारसी कितनी मिलती-जुलती है, इससे इसका पता लगता है। कहा जाता है, ईसा से 975 वर्ष पहले ईरान के राजा सालोमन ने अपने भवन की सजावट के लिए भारत से बहुत-सा सामान मंगवाया था। सिन्धु नदी और ईरान की खाड़ी होकर भारत और यूरोप के बीच में यातायात चलता था। प्रधानतया व्यापार के लिए कपड़ा, हाथी-दांत आदि उस काल में हमारे देश की प्रमुख निर्यात की वस्तुएं थीं। कोलम्बस भारत की खोज में निकला था और भारत की जगह अमेरिका पहुंच गया। जब भारत का और यूरोप का व्यापारी सम्बन्ध बहुत पुराना था, तब यह बात समझ में नहीं आती कि कोलम्बस को भारत की खोज की आवश्यकता क्यों पड़ी। शायद वह कोई निकट के मार्ग से भारत पहुंचा जाए, इसकी खोज में निकला था। ईरान के सेसानियन बादशाह खुसरू अनुशीखां (531 ई० से 579 ई० तक) ने संस्कृत के पंचतंत्र का अनुवाद पहलवी भाषा में परजोई नामक ईरान के एक हकीम से कराया था।

यूनान से भारत का बहुत प्राचीन काल से सम्बन्ध रहा। यूनान के प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता पिथेगोरस के, जो ईसा से 580 वर्ष पूर्व हुए, जीवन-चरित्र के लेखक ने लिखा है कि उनका ब्राह्मणों से सत्संग हुआ था। वे (पिथेगोरस) जिस पुनर्जन्म सिद्धान्त को मानते थे, वह ब्राह्मणों की देन थी। पिथेगोरस महावीर और बुद्ध के समकालीन थे। इन दोनों से प्रेरित हो उन्होंने हिंसा का भी विरोध किया था। पाणिनि ने ईसा के पूर्व चौथी शताब्दी में यवनानी लिपि का उल्लेख किया है। अफलातूं और अरस्तू पर भी भारतीय विचारधारा का बहुत प्रभाव था, इसे अधिकांश विद्वान् स्वीकार करते हैं। यूनानी गणित, विद्या पर भी भारत का प्रभाव था। भारत में ही सशून्य दशमलव गणितविधि निकली थी, जो यूनान तक पहुंची। यूनानियों के रेखागणित ग्रंथों से भारतीय शुल्बसूत्र की इतनी समानता है कि गणित विद्या के इतिहासकार कैन्टोर ने माना है कि रेखागणित सम्बन्धी सिद्धान्तों का भारत और यूनान में आदान-प्रदान हुआ है। यूनान के चिकित्सा शास्त्र पर भी भारत का प्रभाव था। अधिकांश विद्वान् मानते हैं कि यूनान के चिकित्सा शास्त्र के जनक हिप्पोक्रेटीज़ का और वहां के मेटिरिया मेडिका अर्थात् चिकित्सा शास्त्र का आधार भारतीय आयुर्वेद था। यूनान के कथा साहित्य पर भी भारत का प्रभाव पड़ा, जिसे अधिकांश विद्वान् स्वीकार करते हैं।

यूनान के बाद पश्चिम में रोम का उत्थान हुआ। रोम से भी भारत का बहुत सम्बन्ध रहा। यद्यपि प्राचीन रोम के दार्शनिक सिद्धांतों पर भी भारत का प्रभाव था, तथापि भारत का और रोम का यह सम्बन्ध प्रधानतया व्यापारी सम्बन्ध था। सिन्धु नदी और ईरान की खाड़ी से होकर भारत से नावें रोम जातीं और रोम से भारत आतीं। आयात की अपेक्षा भारत से निर्यात कहीं अधिक होता था। रोम के एक विद्वान् प्लीनी ने लिखा है कि रोम के बाजार में भारत का लगभग पांच करोड़ सैस्टर का माल बिकता है। प्लीनी के इस कथन का समर्थन भारतीय विद्वानों ने भी किया है। सैस्टर सिक्का चांदी का था। इसकी कीमत दीनार से चौथाई मानी जाती थी। रोम के सीजर से नीरो के समय भारत का रोम से व्यापार सम्बन्ध बहुत बढ़ा। ईसा की पहली सदी में भारत और यूरोप के बीच की सामुद्रिक यात्रा बहुत व्यवस्थित हो गयी थी।

अफ्रीका के एक भाग के राजा टालेमी फिलाडेल्फस और अफ्रीका के ही उत्तर के साइडन प्रदेश के राजा मग से अशोक ने मैत्री की थी, जिसका ऐतिहासिक प्रमाण है। मिस्र भी अफ्रीका में ही है और विश्व का एक प्राचीनतम देश है। मिस्र के अनेक प्राचीन लेखों में भारतीय संस्कृति का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। मिश्र का सिकन्दरिया प्राचीन काल का एक बड़ा प्रधान नगर था। सिकन्दरिया के बाजार में भारत की वस्तुओं के अनेक भण्डार थे।

अरब देश से भी भारत का बहुत सम्बन्ध था। प्राचीन अरब के चिकित्सा सम्बन्धी समस्त ग्रन्थ आयुर्वेद के ग्रन्थों पर आधारित हैं। चरक और सुश्रुत ग्रन्थों का ईसा की आठवीं सदी में अरबी भाषा में अनुवाद हुआ। ईसा की दसवीं सदी के अरब के विश्वविख्यात हकीम अलरज़ी ने चरक और सुश्रुत को चिकित्सा पद्धति के प्रामाणिक ग्रन्थों के रूप में माना। अरब लेखक इब्नसीना, इब्नसफर्यू आदि की पुस्तकों के लेटिन भाषा के अनुवादों में चरक का अनेक स्थलों पर जिक्र आता है। गणित में अंक और दशमलव गणित पद्धति भारत से अरब गयी। अलबेरूनी ने भी यह स्वीकार किया है। दशमलव गणित गणना सन् 703 ईस्वी के लगभग भारतीय राजदूत बगदाद में अरबों के पास लाये। नवीं सदी के शुरू में अरब के प्रसिद्ध

विद्वान् अबुजाफर मोहम्मद अलखारिज़्मी ने इस गणना को अरबी भाषा में समझाया और धीरे-धीरे यह अरब संसार में फैली। बारहवीं सदी में इसे यूरोप वालों ने अरबों से लिया। उस समय जो अंकगणित इस पर बना उसमें 'अलगोरितमस', 'अलगोरी' आदि शब्द आयें हैं, जो 'अलखारिज़्मी' शब्द के ही रूपान्तर हैं। अबुजाफर मोहम्मद अलखारिज़्मी की पुस्तक की हस्तलिखित पाण्डुलिपि प्राप्त हो गयी है, जिससे इस बात का सबूत मिलता है कि अंक और दशमलव गणित पद्धति भारत से ही अरब गयी थी। अरबी भाषा में अंकों के लिये 'हिंसा' अन्य प्रकार से 'हिन्दसा' शब्द आया है। अरब निवासी भारत को हिन्द कहते थे। भारत से अंकों को प्राप्त करने के कारण उन्होंने यह नाम रखा। यूरोप के माध्यमिक युग में जब अरबों का राज्य स्पेन आदि देशों में फैला, तब स्पेन के सेलेमेन आदि विश्वविद्यालयों में अरब के जो आचार्य अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित, चिकित्सा शास्त्र आदि सिखाते थे, वे स्वयं कहते थे कि यह ज्ञान उन्हें भारत से प्राप्त हुआ है। अरब में न जाने कितने शास्त्र भारत से गये हैं।

मध्य युग के यूरोप और आधुनिक यूरोप पर भी भारत का बहुत प्रभाव पड़ा है। मध्य युग के यूरोप में, जैसा ऊपर कहा है, भारतीय गणित शास्त्र, जिसमें अंक और दशमलव पद्धति प्रधान हैं, अरब के जरिये यूरोप पहुंचा। ईरान के बादशाह खुसरू अनुशीखां ने छठवीं सदी में संस्कृत के पंचतंत्र का जो अनुवाद पहलवी भाषा में करवाया था, उसका मध्यकालीन यूरोप में स्पेनिश आदि कई यूरोपीय भाषाओं में अनुवाद हुआ। यूरोप के मध्यकालीन साहित्य पर पंचतंत्र के इन अनुवादों का काफी प्रभाव पड़ा। आगे चलकर पंचतंत्र के लेटिन, जर्मन, इटेलियन और अंग्रेजी भाषा में भी अनुवाद हुए। फ़्रांस के प्रसिद्ध साहित्यिक दार्शनिक रूसो ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सोशल कांट्रेक्ट' में जिन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है, वे मूल में यूनान के दार्शनिक अरस्तू से लिये गये थे और जैसा ऊपर कहा है, अरस्तू भारतीय विद्वानों से प्रभावित थे। शतरंज (चतुरंग) खेल भी भारत से ही पश्चिम में गया है। आधुनिक पश्चिमी शल्य विद्या में यूरोप के हिनोप्लेस्टी को आपरेशन का ज्ञान भारत से मिला था।

पश्चिमी देशों की तुलना में पूर्वी देशों पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव कही अधिक और स्पष्ट पड़ा है। यह प्रभाव प्रधानतया बौद्ध धर्म के प्रचार से पड़ा है। चीन, जापान, तिब्बत, मंचूरिया आदि देशों में बौद्ध धर्म का फैलाव किसी से छिपा नहीं है। चीन के ही इतिहासज्ञों के मतानुसार ईसा से 217 वर्ष पूर्व बौद्ध धर्म के प्रचारक चीन पहुंच गये थे। चीन में न जाने कितने बौद्ध धर्म के भारतीय ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद हुआ है और यह अनेक भारतीय विद्वानों ने चीन जाकर तथा चीनी विद्वानों ने भारत आकर किया है।

जहां तक हमारे पड़ोसी देशों का सम्बन्ध है अर्थात् तिब्बत, बर्मा, सिंहलद्वीप, मलाया, स्याम, हिन्देशिया के विविध देश और टापू बाली, जावा, सुमात्रा, बोर्निओ, हिन्दचीन आदि, वहां भारतीय संस्कृति का इतना प्रभाव पड़ा कि तिब्बत के सिवा यह सारा क्षेत्र बृहत्तर भारत के नाम से ही प्रसिद्ध हो गया। इस बृहत्तर भारत में सबसे अधिक प्रचार रामकथा का हुआ। भारतीय रामकथा और इन देशों की रामकथा में थोड़ा बहुत अन्तर हैं, परन्तु मूलकथा एक सी ही है। रामकथा केवल भारतीय ही नहीं रह गयी है, यह कथा एशिया की संस्कृति का भी एक अंग बन गयी है। इन देशों में अनेक मन्दिर भी बने हैं। समस्त संसार का सबसे बड़ा भारतीय मन्दिर जावा में है। इन देशों के अनेक मन्दिरों में पूरी की पूरी रामकथा चित्रित

की गयी है। ईसा ने जिस भूमि पर अपना उपदेश दिया था वहां की भूमि सैकड़ों वर्ष पहले बौद्ध धर्म के उपदेशों के कारण ईसा के उपदेश के लिए उर्वरा बन चुकी थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय संस्कृति का प्रभाव प्राचीन काल से ही अनेक देशों पर पड़ा है। इन देशों में पूर्वीय देश हैं, पश्चिमी देश हैं, अफ़्रीका है और हमारे पड़ोसी देश हैं।

भारत पर अन्य संस्कृतियों का प्रभाव

भारत ने सांस्कृतिक दृष्टि से संसार को न जाने कितना और क्या-क्या दिया है, परन्तु संसार से उसे कुछ नहीं मिला और उसने कुछ नहीं लिया यह कहना गलत होगा। ज्ञान जहां से भी आया, अपनी सहिष्णुता की वृत्ति के कारण भारत ने उसे सदा ग्रहण किया है। यह हो सकता है कि इस आदान-प्रदान में प्रदान अधिक रहा हो और आदान कम, परन्तु आदान भी रहा है और इस आदान का भारत ने अपनी संस्कृति में मुक्तहस्त से मिश्रण किया है। जिस प्रकार ईसाई संस्कृति केवल ईसा के चारों ओर घूमती है, इस्लामी संस्कृति मुहम्मद साहब के और आधुनिक कम्युनिस्ट संस्कृति भी कार्ल मार्क्स के, उस प्रकार भारत में नहीं हुआ। भारतीय संस्कृति को किसी एक व्यक्ति अथवा किसी एक जाति ने निर्मित नहीं किया। न जाने कितने अवतारों, कितने ऋषि-मुनियों, कितने तत्त्ववेत्ताओं, कितने दार्शनिकों, कितने साहित्यकारों, कितने वैज्ञानिकों, कितने सन्तों और कितने भक्तों आदि ने इसका निर्माण तथा विकास किया है; साथ ही इस कार्य में व्यक्तियों के साथ कितनी ही जातियों का योग है। यह संस्कृति सामासिक है और सामासिक संस्कृति में कितना ही सम्मिश्रण हुआ है। यह भिन्न-भिन्न विद्वानों, भिन्न-भिन्न जातियों, भिन्न-भिन्न भाषा-भाषियों, भिन्न-भिन्न रंगों, रूपों और वेश-भूषाओं वालों ने बनायी है।

सांस्कृतिक दृष्टि से भारत की एकता

पुराने समय में आवागमन की दिक्कतों तथा एक-दूसरे से काफी दूर रहने और मार्ग के पहाड़ों, नदियों, जंगलों व मरुस्थलों के कारण एक-दूसरे से पृथक् रहने पर भी सांस्कृतिक दृष्टि से यहां के सब लोग एक हैं। जाति में और धर्म में विभिन्नता रहने पर भी सांस्कृतिक एकता है। ऊपर से थोड़ी बहुत सांस्कृतिक भिन्नता चाहे दृष्टिगोचर हो, परन्तु मूल में एकता है। सामासिकता और सम्मिश्रण के कारण यह एकता दृढ़ से दृढ़तर होती गयी है। सभी ने इस एकता को बनाये रखने का प्रयत्न किया है। दार्शनिक दृष्टि से समस्त सृष्टि में एकता का निरीक्षण 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सूक्त, अश्वमेध और राजसूय यज्ञ के सदृश यज्ञों द्वारा इस एकता को रखने का प्रयत्न, उत्तर की सीमा पर केदारनाथ और बदरी नाथ के मन्दिरों में दक्षिण के पुजारियों की प्रतिष्ठा, हर्षवर्धन के समय सूर्य, शिव और बुद्ध की संयुक्त पूजा, तुलसीदास द्वारा शैवों और वैष्णवों की मैत्री का प्रयत्न, अकबर का दीने-इलाही और गुरु नानक का सिक्ख धर्म और इसी प्रकार के न जाने कितने यत्न इस बात को सिद्ध करते हैं कि इस देश के चिन्तकों और कर्मठों का एक, केवल एक आदर्श रहा है—हर दृष्टि से देश की एकता को संस्थापित रखा जाये। भारतीय संस्कृति का सबसे बड़ा गुण है—'विविधता में एकता।'

भारतीय संस्कृति में जो दोष आ गये

इस सृष्टि की कुछ ऐसी रचना है कि सर्वथा निर्दोष कोई वस्तु है ही नहीं और अच्छी से अच्छी चीजों में भी शनैः-शनैः कुछ दोष आते और बढ़ते जाते हैं। इसीलिए एक दिन जो

वस्तु उत्पन्न होती है काल पाकर उसका नाश भी हो जाता है, चाहे इसमें समय कितना ही क्यों न लगे। उत्पत्ति, विकास और नाश इस सृष्टि की हर चीज का अकाट्य नियम है।

भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में यही बात कही जा सकती है। हजारों या लाखों वर्ष पहले जिस संस्कृति का उदय हुआ था, जो संस्कृति अपने कुछ विशिष्ट गुणों के कारण, जिनमें व्यापकता, उदारता, सामासिकता और विविधता में एकता की भावना प्रमुख थी, इतनी महान् हो गयी थी, उसी संस्कृति में सबसे बड़े दोष संकीर्णता की उत्पत्ति हुई।

श्री दिनकर जी की प्रसिद्ध पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' की प्रस्तावना में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है—"इस संस्कृति में समन्वयन तथा नये उपकरणों को पचाकर आत्मसात् करने की अद्भुत् योग्यता थी। जब तक इसका यह गुण शेष रहा, यह संस्कृति जीवित और गतिशील रही। लेकिन बाद में इसकी गतिशीलता जाती रही, जिससे यह संस्कृति जड़ हो गयी और उसके सारे पहलू कमजोर पड़ गये। भारत के समग्र इतिहास में हम दो परस्पर विरोधी और प्रतिद्वन्द्वी शक्तियों को काम करते देखते हैं। एक तो वह शक्ति है जो बाहरी उपकरणों को पचाकर समन्वय और सामंजस्य पैदा करने की कोशिश करती है, और दूसरी वह जो विभाजन को प्रोत्साहन देती है, जो एक बात को दूसरी से अलग करने की प्रवृत्ति को बढ़ाती है। भारत में दोनों बातें एक साथ बढ़ीं। एक ओर तो विचारों और सिद्धांतों में हमने अधिक से अधिक उदार और सहिष्णु होने का दावा किया, दूसरी ओर हमारे सामाजिक आचार अत्यन्त संकीर्ण होते गये।"

पंडित जी का यह कथन सर्वथा सत्य है।

हमारे ऋषि-मुनियों और तत्त्ववेत्ताओं ने इस समस्त सृष्टि में एक ही तत्त्व ब्रह्म का निरीक्षण कर घोषणा की थी कि यथार्थ में यह समस्त सृष्टि एक ही तत्त्व है और हमारी संस्कृति के व्यापक, उदार, सामासिक एवं विविधता में एकता के निरीक्षण वाले समस्त सद्गुणों का आधार यही खोज थी। मैंने ऊपर कहा है कि हमारी संस्कृति धर्मप्राण संस्कृति है। धर्म शब्द को हम कितने व्यापक अर्थ में लेते हैं, इसका भी मैंने पहले कुछ निरूपण किया है। हमारी संस्कृति में संकीर्णता का जो दोष आया, वह संकीर्णता भी धर्म बन गयी। शूद्रों और स्त्रियों को समान अधिकारों से वंचित करना और मानव को निकृष्ट से निकृष्ट, पशुओं से भी बदतर, कुत्ते-बिल्लियों से भी कहीं हेय, स्पर्शयोग्य भी न मानना, ऐसे अस्पृश्यों की यदि छाया भी पड़ जाय तो स्नान का विधान, यदि कभी कोई हमारे धर्म को छोड़ किसी अन्य धर्म को ग्रहण कर ले और वह वापिस हमारे धर्म में आना चाहे तो उसे वापिस आने का अधिकार न रहना ये संकीर्णता की पराकाष्ठाएं हैं।

पुराणों में कहा गया है सतयुग में केवल एक 'हंस' नामक वर्ण था। कर्म के अनुसार एक वर्ण के चार वर्ण हुए और फिर एक-एक वर्ण में कितनी जातियां और एक-एक जाति में कितनी उपजातियां। इन उपजातियों और जातियों में आपस में न खान-पान और न विवाह सम्बन्ध। 'कान्यकुब्जा : द्विजा : श्रेष्ठा:' यह जिन कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के सम्बन्ध में कहा जाता है उन्हीं के संबंध में यह कहावत भी प्रसिद्ध है कि आठ कनौजिये नौ चूल्हे। ऐसी स्थिति के लिए भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द जी ने ठीक लिखा है—"किये तीन तेरह सबै, चौका चौका लाय।"

जो समाज किसी समय अपने उपर्युक्त सांस्कृतिक सद्गुणों के कारण विकसित होता हुआ उन्नत होता जा रहा था, वही इस एक संकीर्णता के दुर्गुण के कारण टूक-टूक हो गया। इन

उच्च-नीच की भावनाओं ने आपसी कलह को पैदा किया। फूट और बैर समस्त समाज में भर गये। व्यापक दृष्टि न रहने के कारण लोग अपनी-अपनी उपजातियों और जातियों के दायरे में सीमित होगये। अगणित रूढ़ियां फैलीं। भारतीय समाज और भारत देश की भावनाओं का लोप हुआ और इसका जो स्वाभाविक नतीजा हो सकता था, वही निकला। देश शक्तिहीन और निर्बल होकर पराधीन हो गया। और इस पराधीनता में हमने देखा कि इस देश के निवासियों ने विदेशियों से मिलकर अपने देश-वासियों के गले काटे हैं।

भारतीय संस्कृति में प्रत्येक व्यक्ति के लिए ऋषि ऋण, देव ऋण और पितृ ऋण से मुक्त होना आवश्यक माना जाता था। ऋषि ऋण से मोक्ष पाने के लिए शिक्षा आवश्यक थी। अतः उपनयन और समावर्तन दो संस्कार महत्त्वपूर्ण थे। शिक्षा की अवहेलना हुई। उपनयन संस्कार का अर्थ केवल एक सूत की माला को गले में डाल लेना माना जाने लगा। उपनयन व समावर्तन संस्कारों के बीच विद्याध्ययन के लिए बारह वर्ष गुरुकुल में निवास आवश्यक था। उस बारह वर्ष के समय का लोप हो उपनयन और समावर्तन संस्कार एक ही दिन होने लगे। देव ऋण से मुक्ति पाने के लिए जो यज्ञ आवश्यक थे, और जिन यज्ञों की भगवान कृष्ण ने एक नवीन व्याख्या की थी, उसकी ओर कोई ध्यान नहीं रहा। केवल एक पितृ ऋण से लोग मुक्ति पाने के लिए देश की जनसंख्या को बढ़ाने लगे। दूसरे शब्दों में सन्तानोत्पत्ति पितृ ऋण से मोक्ष प्राप्त करने का साधन न माना जाकर विषय वासना की पूर्ति का साधन मात्र रह गयी। भारतीय संस्कृति में जिन सोलह संस्कारों का महत्त्व था उन संस्कारों में केवल एक संस्कार का पालन होने लगा—विवाह संस्कार। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जो हमारी संस्कृति के चार प्रमुख कर्त्तव्य थे, उनमें धर्म का विकृत रूप हो गया और मोक्ष की ओर कोई ध्यान नहीं रहा। अर्थ और काम दो ही जीवन के कर्त्तव्य हो गये। सच्चे धर्म और मोक्ष की ओर दृष्टि रखे बिना अर्थ और काम का रूप, पापमय हो जाता है और जहां पाप आया वहां बरकत समाप्त हो जाती है। अतः अर्थ जीवन का उद्देश्य बन जाने पर भी देश निर्धन हो गया और कामवृत्ति अनैतिकता लायी, जिससे व्यष्टि और समष्टि दोनों के दुःखों और कष्टों का पारावार न रहा।

शूद्र और अस्पृश्यों को समाज में जब कोई सम्मानप्रद स्थान ही नहीं रहा, तब उन्होंने धर्म परिवर्तन आरम्भ किया। मुसलमानों और ईसाईयों की संख्या बढ़ चली और जो कभी आर्य धर्म के अनुयायी थे, उन्होंने अन्य धर्म-ग्रहण कर अपने पृथक् अधिकारों की पुकार मचायी।

हमारे देश की स्त्रियां ऐसी विदुषी होती थीं कि शंकराचार्य और मण्डन मिश्र के शास्त्रार्थ में मण्डन मिश्र की पत्नी भारती देवी को निर्णायक नियुक्त किया गया था। वहीं स्त्री-शिक्षा शून्यवत् हो गयीं, वरन् अनेक ऐसे भी पुरुष विद्वान् हुए, जिन्होंने स्त्री-शिक्षा का विरोध तक किया। पुरुषों को यहां देवता नहीं कहते थे, पर स्त्रियों को देवियां कहते थे और आज भी कहते हैं। किन्तु कहने को चाहे उन्हें देवियां कहा जाय और भाषणों में "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:" मनुस्मृति के श्लोक का चाहे यह चरण पढ़ा जाय, पर स्त्रियों को पर्दे में घर के भीतर रखा जाने लगा। उनके दो कर्त्तव्य रह गये—चौके में खाना बनाना और सन्तानोत्पत्ति करना।

पुनर्जागरण

परन्तु वृद्ध भारत में तरुणाई के तत्त्वों की सर्वथा समाप्ति नहीं हुई थी। जब हम अन्य प्राचीन देशों की ओर दृष्टि डालते हैं, तब हम देखते हैं कि जो देश कभी अत्यधिक

सुसंस्कृत थे उनका आज के संसार में या तो कोई स्थान ही नहीं रह गया है अथवा उन्होंने अपनी पुरानी संस्कृति को लात मार किसी नये धर्म या किसी नये वाद को अपनाया है। मिश्र और यूनान मुसलमान और ईसाई हो गये। चीन लाल हो गया। जैसा ऊपर कहा गया है भारत को छोड़कर अन्य प्राचीन देशों की पुरानी संस्कृति या तो उन देशों के खण्डहरों में दिखती है अथवा अजायबघरों में। भारत में यह नहीं हुआ। आधुनिक भारत में भी क्रांतिकारी परिवर्तन हुए, पर पुरानी परम्परा का सर्वथा विच्छेद करके नहीं; उस परम्परा में जो दोष आ गये थे उन दोषों का निवारण करके। अतः इन क्रांतिकारी परिवर्तनों में सुधार और विकास की भावना प्रधान रही। ब्रह्म समाज के प्रवर्तक राजा राममोहन राय और उनके अनुयायी केशवचन्द्र सेन आदि, आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती और उनके अनुयायी स्वामी श्रद्धानन्द आदि ने हमारी पुरानी धर्मप्राण संस्कृति से सम्बन्ध विच्छेद न कर उसमें जो दोष आ गये थे उनका निवारण कर समाज में सुधार का कार्य आरम्भ किया। हमारे पुनर्जागरण (रिनेसां) और सुधार (रिफार्मेशन) के इस काल में भी भारतीय परम्परा के अनुसार अनेक महापुरुषों ने जन्म लिया। पहले समाज सुधार का कार्य आरम्भ हुआ। हमारी संस्कृति धर्मप्राण है इसलिए धार्मिक सुधारों के बिना यह समाज सुधार सम्भव ही नहीं था क्योंकि हमारी संस्कृति में जो दोष आ गये थे और अभी भी हैं, उन दोषों को भी धर्म का रूप मिल गया था। दृष्टान्त के लिए सती प्रथा थी, विधवा-विवाह न हो सकता था, जाति भेद आ गया था और अस्पृश्यता भी थी। ब्रह्म समाज और आर्य समाज ने धार्मिक दृष्टि से इन रूढ़ियों का विरोध आरम्भ किया। इसके बाद श्री रामकृष्ण परमहंस का समय आया जो न समाज-सुधारक थे और न किसी भी प्रकार के प्रचारक। वे थे भारतीय धर्मप्राण, नैतिक संस्कृति के मूर्तिमन्त प्रतीक। जो समाज अनैतिकता के कारण भ्रष्ट और पतित समाज हो चला था, श्री रामकृष्ण के दर्शन, वाणी और चरित्र से उसमें पुनः पवित्रता की एक लहर आयी। उसी समय हुए उनके शिष्य स्वामी विवेकानन्द, जिन्होंने भारत के परतन्त्र रहते हुए भी भारतीय धर्मप्राण संस्कृति की आधुनिक संसार में ध्वजा फहरायी। इसके बाद आया महात्मा गांधी का युग। गांधीजी ने परतन्त्र भारत को स्वतन्त्रता दिलाने का तो प्रयत्न किया ही, परन्तु जिस प्रणाली से उन्होंने भारत की आज़ादी की कोशिश की, वह सम्पूर्ण संसार के मानव इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना थी। गांधीजी को जो लोग राजनैतिक नेता मानते हैं, वे भूल करते हैं। गांधीजी ने देश को राजनैतिक स्वतन्त्रता दिलायी इसमें सन्देह नहीं और इस प्रकार वे इतिहास में एक राजनैतिक नेता भी माने जायंगे, परन्तु राजनैतिक स्वतंत्रता का प्रयत्न तो उनके अभीष्ट का एक साधन मात्र था। व्यष्टि और समष्टि के सम्पूर्ण सांस्कृतिक जीवन का उनका एक जीवन-दर्शन था। वह जीवन-दर्शन केवल भारतीय स्वतंत्रता का साधन नहीं था। वह उससे बड़ा, कहीं बड़ा, कहीं महान् था और इस सांस्कृतिक जीवन-दर्शन का केवल भारत के लिए ही नहीं, समस्त आधुनिक संसार के लिए उपयोग है। जहां तक गांधीजी के राजनैतिक कार्य का सम्बन्ध है, लोकमान्य तिलक आदि द्वारा उस कार्य की पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी। गांधी युग में भारत में बड़े-बड़े व्यक्तित्वों का विकास हुआ। इनमें गांधीजी के बाद सबसे महान् व्यक्तित्व है गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर का। पराधीनता के काल में भी रवीन्द्रबाबू ने सारे संसार पर कला के मार्ग द्वारा भारतीय संस्कृति की एक अद्भुत छाप लगायी।

भारतीय संस्कृति और संसार का भविष्य

यातायात के शीघ्रगामी साधनों के कारण यह दुनियां बहुत छोटी हो गयी है। आज किसी देश या किसी देश की संस्कृति पर संसार के अन्य देशों और संस्कृतियों को छोड़ पृथक् रूप से विचार ही नहीं किया जा सकता।

महात्मा गांधी का जन्म और कार्य केवल भारत की ही एक महान् घटना नहीं थी, परन्तु समस्त विश्व की एक महान् घटना थी। भारत में गौतम बुद्ध के बाद और संसार में ईसा के पश्चात् किसी ऐसे महापुरुष का जन्म नहीं हुआ था। फिर गौतम बुद्ध और ईसा के समय तथा इस काल में बड़ा भारी अन्तर था। उस समय दुनियां इतनी छोटी नहीं थी, बहुत बड़ी थी। गौतम बुद्ध और ईसा का इतिहास में चाहे बहुत बड़ा महत्त्व हो और उनसे संसार को शनः-शनैः चाहे प्रेरणा मिली हो, परन्तु एक तो वह प्रेरणा मानव जीवन के एक विशिष्ट क्षेत्र में मिली, दूसरे उस प्रेरणा ने व्यष्टि और समष्टि के व्यावहारिक जीवन को उस प्रकार की प्रेरणा नहीं दी, जैसी गांधीजी ने।

मैंने ऊपर कहा है कि मनुष्य संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी इसलिए है कि निसर्ग ने उसे जो ज्ञानशक्ति दी है वह अन्य किसी प्राणी को नहीं। मनुष्य पहले चिन्तन करता है, तब उस चिन्तन के अनुरूप उसकी कृति होती है। गांधीजी के जीवन दर्शन ने इस संसार के मेघों रूपी जीवन में एक बिजली सी कौंधा दी। बिजली का प्रकाश स्थिर नहीं रहता, परन्तु अंधेरी रात में यदि काली घटाएं हों और मार्ग न सूझता हो, तो बिजली की वह कौंध मार्ग को इंगित अवश्य कर देती है। गांधीजी ने जो कुछ कहा और किया उससे भारत और संसार का व्यष्टि और समष्टि जीवन स्थायी रूप से अब तक आलोकित नहीं हुआ है, परन्तु भारत और संसार के कल्याण का मार्ग कौन-सा है, यह गांधीजी ने अपनी कथनी एवं करनी से बता दिया है और आज संसार के समस्त विचारक इस बात को स्वीकार करते हैं कि यदि संसार को सर्वनाश से बचना है तो उसके लिए केवल एक मार्ग है और वह है गांधीजी द्वारा बताया हुआ सत्य और अहिंसा का पथ।

महात्मा गांधी ने कोई सर्वथा नयी बात नहीं कही। उन्होंने जो कुछ कहा उसका आधार वही था, जिसकी खोज हज़ारों या लाखों वर्ष पूर्व भारत के ऋषि-मुनियों और तत्त्ववेत्ताओं ने की थी अर्थात् यह समस्त सृष्टि एक ही तत्त्व है। यही गांधीजी का सत्य है और यदि यही सत्य है, मैं वही हूं जो तुम और तुम वही हो जो मैं और समस्त सृष्टि वही है जो तुम और मैं—"सर्वं खल्विदं ब्रह्म" तो अहिंसा तो अपने आप आ जाती है; कोई स्वयं अपनी हिंसा तो नहीं करता। फिर भारतीय संस्कृति का अहिंसा सदा ही एक प्रधान आधार रहा है, परन्तु यह प्रधान आधार मानव-जीवन के कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में, सम्पूर्ण मानव जीवन में नहीं। गांधीजी ने सत्य की नींव पर सम्पूर्ण मानव जीवन का अहिंसा आधार माना है।

भारतीय संस्कृति के इसी सत्य के आधार पर भारतीय और संसार के नवजीवन का निर्माण करना है।

इस समय संसार की ऐसी भयावह स्थिति है कि भावी युद्ध के भय से सारे संसार के देश और सारे संसार का मानव जीवन थर-थर कांप रहा है। अणुबम, उद्‌जन बम

सदृश विनाशकारी आयुधों का निर्माण हो रहा है। हाल ही में रूस के तानाशाह ख्रुश्चेव ने अपने वक्तव्य में कहा था कि रूस ने इस नाश के लिए एक और परिष्कृत बम बनाया है। भगवान् जाने वह कैसा होगा, क्योंकि अणुबमों के विस्फोटों के वृत्त तो हम यदा-कदा सुनते रहते हैं और निर्जन नीर अथवा मरुस्थलों में भी इनका विस्फोट होने से जो हानियां होती हैं, उनका वर्णन भी जानते रहते हैं, परन्तु रूस के इस नये आविष्कार का यदि कहीं विस्फोट हो, तो उसका क्या नतीजा निकलेगा इससे हम अभी तक अनभिज्ञ हैं। जो कुछ हो, सर्वनाश की यह तैयारी चल रही है, अबाधित रूप से चल रही है। भारत को छोड़ संसार के समस्त प्रधान-प्रधान देश दो गुटों में बंट गये हैं। एक गुट का नेतृत्व अमेरिका करता है और दूसरे गुट का नेतृत्व रूस। दोनों एक-दूसरे से घोर घृणा करते हैं। इतने पर भी यदि लड़ाई नहीं होती, तो इसका यह कारण नहीं है कि दोनों में से कोई भी गुट शांति का उपासक है। लड़ाई न होने का कारण यह है कि दोनों में से एक को भी जीत का विश्वास नहीं; यदि यह हो जाय तो लड़ाई तो कल न होकर आज और आज न होकर इसी क्षण हो जाय।

एक ओर आधिभौतिक विकास और हर प्रकार की आधिभौतिक सुखों की प्रचुर सामग्री की सृष्टि और दूसरी ओर महानाश का यह निर्माण। विडम्बना......भारी विडम्बना है। इस विडम्बना का प्रधान कारण है अध्यात्म की सर्वथा अवहेलना और अधिभूत में महान् आसक्ति।

संसार की इस विस्फोटक, महान् विस्फोटक स्थिति में केवल भारत एकमात्र ऐसा देश है जो अपनी सांस्कृतिक परम्परा के आधार पर और जो कुछ गांधीजी ने उसे कहा और सिखाया है उसके आधार पर, सच्ची शांति चाहता है।

भारत के इस समय के प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू का 'पंचशील' सिद्धान्त इसी नींव पर आधारित है।

भारत को पहले अपनी संस्कृति के आधार पर अपना निर्माण करना है और फिर समस्त संसार को उससे प्रेरणा देनी है। मैंने ऊपर भारतीय संस्कृति का वर्णन करते हुए यह कहा है कि भारतीय संस्कृति में एक ओर आध्यात्मिक नींव पर दार्शनिक बातों का चरमोत्कर्ष हुआ और दूसरी ओर आधिभौतिक नींव पर वैज्ञानिक और कलात्मक बातों का। इसी मार्ग से हमारा नव-निर्माण भी होना चाहिए। यदि हमने अध्यात्म को छोड़ दिया और केवल अधिभूत में रम गये, तो हमारी दशा भी पश्चिमी देशों के समान हो जायगी, और यदि हमने अधिभूत से आंखें मूंद लीं, तो हमारी गरीबी, हमारी भूख हमें राख कर देगी। अध्यात्म और अधिभूत के आधार पर ही हमें केवल वस्तुओं का ही निर्जीव निर्माण नहीं करना है, अपितु अपनी नयी पीढ़ी भी इसी आधार पर निर्मित करनी है।

स्वाधीनता के पश्चात् हमें यह देश खंडहर के रूप में मिला था। इतना गरीब, इतना अशिक्षित जितना दुनिया का कोई देश नहीं है। स्वाभाविक रूप से हमारा ध्यान अधिभूत के निर्माण में विशेष रूप से खिंचा। यह देश कृषि प्रधान है अतः कृषि का उत्पादन बढ़ाना आवश्यक है। हमने बड़े-बड़े बांध बनाना आरम्भ किया। बड़ी-बड़ी नहरें और पाताली कूप खोदे। खाद के बड़े-बड़े कारखाने बनाये। उद्योग-धंधों में हम अत्यधिक पिछड़े हुए थे। स्वतन्त्रता के पूर्व यहां कपड़े सीने की सुई तक न बनती थी,